दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

सरव पर्व में बड़ौ अठाई पर्व है।
नंदीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव हैं॥
हमें शकति सो नांहीं इहाँ करि थापना।
पूजें जिनगृह प्रतिमा है हित आपना॥

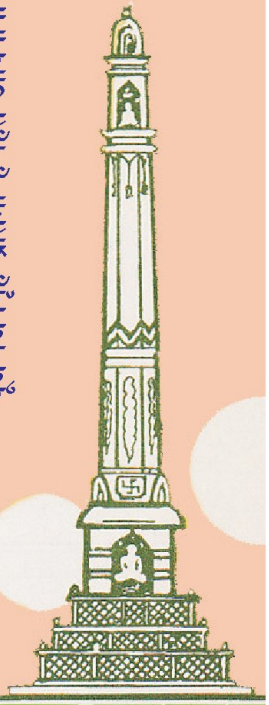

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक ५ [४०१] नवम्बर, १९७८

आत्मधर्म [४०१]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ इक जोगी असन बनावे
२ जीवन ही बदल डाला
३ संपादकीय : उत्तम ब्रह्मचर्य
४ समल विमल न विचारिए [समयसार प्रवचन]
५ सततमनुभवामः शुद्धमात्मानमेकम् [नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

भरोसा करे तो भव-भ्रमण छूट जाये

यह जीव लकड़ी, लोहा, अग्नि, पानी, बिजली आदि के स्वभाव का भरोसा करता है; दवाई की गोली का भरोसा करता है। जिनसे पर में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता, तो भी जीव उनका भरोसा करता है; तो जिसमें ज्ञान आदि अनंत आश्चर्यकारी शक्तियाँ भरी हैं—ऐसे अचिंत्य सामर्थ्यवान भगवान आत्मा का भरोसा क्यों नहीं करता ? करे तो उसका भव-भ्रमण छूट जाये।

—पूज्य स्वामीजी

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०१] अंक : ५

इक जोगी असन बनावे, तसु भखत असन अघ नसन होत।
इक जोगी असन बनावे..... ॥टेर॥

ज्ञान-सुधारस जल भर लावे, चूल्हा-शील जलावे।
कर्म-काष्ठ को चुग-चुग जारे, ध्यान-अगनि प्रजलावे॥
इक जोगी असन बनावे..... ॥1॥

अनुभव-भाजन निजगुण-तंदुल, समता-क्षीर मिलावे।
सोहं मिष्ट निशंकित व्यंजन, समकित-छौंक लगावे॥
इक जोगी असन बनावे..... ॥2॥

स्याद्वाद सतभंग मसाले, गिनती पार न पावे।
निश्चयनय का चमचा फेरे, विरद भावना भावे॥
इक जोगी असन बनावे..... ॥3॥

आप बनावे आपही खावे, खावत नाहिं अघावे।
तदपि मुक्ति पद-पंकज सेवे, 'नयनानंद' शिर नावे॥
इक जोगी असन बनावे..... ॥4॥

जीवन ही बदल डाला

[इस स्तंभ में उन आत्मार्थियों के महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये जायेंगे, जिनके जीवन में आध्यात्मिक रुचि आत्मधर्म के माध्यम से जगी है।]

जब से आत्मधर्म जयपुर से प्रकाशित होने लगा है, तब से आत्मा की बात समझने को बहुत ही बल मिला है। ईश्वर उन लोगों को सद्बुद्धि दे जो धर्म के नाम पर अपना व्यवहार चलाकर समाज को पतन की ओर ले जा रहे हैं।

हमारे यहाँ २५ वर्ष पूर्व कोई भी आत्मा का नाम नहीं जानता था; परंतु जब विदिशा में सन् १९७० में पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित प्रशिक्षण शिविर लगा तब हम पंडित ज्ञानचंदजी के आग्रह पर शिविर में गए थे।

हमारे यहाँ की समाज ने तो बहुत विरोध किया था। लोगों में आम धारणा थी कि ये लोगों में धर्म के नाम पर भ्रामक प्रचार कर रहे हैं। परंतु उस शिविर में हमारी सभी भ्रांतियाँ दूर हो गईं। इन शिविरों से अन्य लोगों की भी भ्रांतियाँ धीरे-धीरे दूर हुईं और शिविरों के प्रति रुचि जागृत हुई। लोगों ने आत्मधर्म पढ़ना प्रारंभ किया; इसके स्वाध्याय से हमारा तथा हमारे साथियों का जीवन ही बदल गया।

अब तो ऐसा लगने लगा है कि कब इस असार संसार में मनुष्यभव को सार्थककर आत्मकल्याण करें।

—शिखरचंद जैन पुजारी, खनियाधाना (मध्यप्रदेश)

सम्पादकीय

उत्तम ब्रह्मचर्य | एक परिशीलन

[गतांक से आगे]

यद्यपि यहाँ उत्तम ब्रह्मचर्य का वर्णन मुनिधर्म की अपेक्षा किया गया है। अत: उत्कृष्टतम वर्णन है; तथापि गृहस्थों को भी ब्रह्मचर्य की आराधना से विरत नहीं होना चाहिए, उन्हें भी अपनी-अपनी भूमिकानुसार इसे अवश्य धारण करना चाहिये।

मुनियों और गृहस्थों की कौनसी भूमिका में किस स्तर का अंतर्बाह्य ब्रह्मचर्य होता है—इसकी चर्चा चरणानुयोग के शास्त्रों में विस्तार से की गई है। जिज्ञासु बंधुओं को इस विषय में विस्तार से वहाँ से जानना चाहिये। उन सबका वर्णन इस लघु निबंध में संभव नहीं है।

ब्रह्मचर्य एक धर्म है, उसका सीधा संबंध आत्महित से है। इसे किसी लौकिक प्रयोजन की सिद्धि का माध्यम बनाना ठीक नहीं है। पर इसका प्रयोग एक उपाधि जैसा किया जाने लगा है। यह भी आजकल एक उपाधि (Degree) बन कर रह गया है। जैसे—शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम०ए०, पीएच०डी० या वाणीभूषण, विद्यावाचस्पति; या दानवीर, सरसेठ आदि उपाधियाँ व्यवहृत होती हैं; उसीप्रकार इसका भी व्यवहार चल पड़ा है।

यह यश-प्रतिष्ठा का साधन बन गया है। इसका उपयोग इसी अर्थ में किया जाने लगा है। इस कारण भी इस क्षेत्र में विकृति आयी है।

जिसप्रकार आज की सम्मानजनक उपाधियाँ भीड़-भाड़ में ली और दी जाती हैं, उसीप्रकार इसका भी आदान-प्रदान होने लगा है। अब इसका भी जुलूस निकलता है। इसके लिये भी हाथी चाहिये, बैंड-बाजे चाहिये। यदि स्त्री-त्याग को भी बैंड-बाजे चाहिये तो फिर शादी-ब्याह का क्या होगा?

आज की दुनियाँ को क्या हो गया है? इसे स्त्री रखने में भी बैंड-बाजे चाहिये, स्त्री

छोड़ने में भी बैंड-बाजे चाहिये। समझ में नहीं आता ग्रहण और त्याग में एक-सी क्रिया कैसे संभव है ?

एक व्यक्ति भीड़-भाड़ के अवसर पर अपने श्रद्धेय गुरु के पास ब्रह्मचर्य लेने पहुँचा, पर उन्होंने मना कर दिया तो मेरे जैसे अन्य व्यक्ति के पास सिफारिश कराने के लिये आया। जब उससे कहा गया—'गुरुदेव अभी ब्रह्मचर्य नहीं देना चाहते तो मत लो, वे भी तो कुछ सोच-समझकर मना करते होंगे।'

उसके द्वारा अनुनय-विनयपूर्वक बहुत आग्रह किये जाने पर जब उससे कहा गया कि 'भाई! समझ में नहीं आता कि तुम्हें इतनी परेशानी क्यों हो रही है ? भले ही गुरुदेव तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत न दें, पर वे तुम्हें ब्रह्मचर्य से रहने से तो रोक नहीं सकते; तुम ब्रह्मचर्य से रहो न, तुम्हें क्या परेशानी है ? तुम्हें ब्रह्मचर्य से रहने से तो कोई रोक नहीं सकता।'

इसके बाद भी उसे संतोष नहीं हुआ तो उससे कहा गया कि 'अभी रहने दो, अभी छह मास अभ्यास करो। बाद में तुम्हें ब्रह्मचर्य दिला देंगे, जल्दी क्या है ?'

तब वह एकदम बोला—'ऐसा अवसर फिर कब मिलेगा ?'

'कैसा अवसर'—यह पूछने पर कहने लगा—'यह पंचकल्याणक मेला बार-बार थोड़े ही होगा।'

अब आप बताइये कि उसे ब्रह्मचर्य चाहिये, कि पचास हजार जनता के बीच ब्रह्मचर्य चाहिये। उसे ब्रह्मचर्य से नहीं, ब्रह्मचर्य की घोषणा से मतलब था। उसे ब्रह्मचर्य नहीं, ब्रह्मचर्य की डिग्री चाहिये थी; वह भी सबके बीच घोषणापूर्वक, जिससे उसे समाज में सर्वत्र सम्मान मिलने लगे, उसकी भी पूछ होने लगे, पूजा होने लगे।

जैनधर्मानुसार तो सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक घर में रहने का अधिकार ही नहीं, कर्तव्य है। अर्थात् बनाकर खाने की ही बात नहीं, कमाकर खाने की भी बात है; क्योंकि वह अभी परिग्रहत्यागी नहीं हुआ है, आरंभत्यागी भी नहीं हुआ है। उसे तो चादर ओढ़ने की भी जरूरत नहीं है; वह तो धोती, कुर्ता, पगड़ी आदि पहनने का अधिकारी है; शास्त्रों में कहीं भी इसका निषेध नहीं है।

पर ब्रह्मचर्यप्रतिमा तो दूर, पहली भी प्रतिमा नहीं; कोरा ब्रह्मचर्य लिया, चादर ओढ़ी

और चल दिये। कमाकर खाना तो दूर, बनाकर खाने से भी छुट्टी। मुझे इस बात की कोई तकलीफ नहीं कि उन्हें समाज क्यों खिलाता है ? समाज की यह गुणग्राहकता प्रशंसनीय ही नहीं, अभिनंदनीय है। मेरा आशय तो यह है कि जब उनकी व्यवस्था कहीं की समाज नहीं कर पाती है, तब देखिये उनका व्यवहार; सर्वत्र उक्त समाज की बुराई करना मानो उनका प्रमुख धर्म हो जाता है। समाज प्रेम से उनका भार उठाये, आदर करे—बहुत बढ़िया बात है, पर बलात् समाज पर भार डालना शास्त्र-सम्मत नहीं है।

ब्रह्मचर्यधर्म तो एकदम अंतर की चीज़ है, व्यक्तिगत चीज़ है; पर वह भी आज उपाधि (Degree) बन गयी है। ब्रह्मचर्य तो आत्मा में लीनता का नाम है, पर जब अपने को ब्रह्मचारी कहनेवाले आत्मा के नाम से ही बिचकते हों तो क्या कहा जाये ?

आत्मा के अनुभव बिना तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होता, व्रत तो सम्यग्दर्शन के बाद होते हैं। स्वस्त्री का संग तो छठवीं प्रतिमा तक रहता है, सातवीं प्रतिमा में स्वस्त्री का साथ छूटता है। अर्थात् स्त्रीसेवन के त्याग के पहले आत्मा का अनुभवरूप ब्रह्मचर्य होता है, पर उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं है।

यहाँ सम्यग्दर्शन के बिना भी बाह्य ब्रह्मचर्य का निषेध नहीं है, वह निवृत्ति के लिये उपयोगी भी है। गृहस्थ संबंधी झंझटों के न होने से शास्त्रों के अध्ययन-मनन-चिंतन के लिये पूरा-पूरा अवसर मिलता है। पर बाह्य ब्रह्मचर्य लेकर स्वाध्यायादि में न लगकर मानादि पोषण में लगे तो उसने बाह्य ब्रह्मचर्य भी नहीं लिया, मान लिया है, सम्मान लिया है।

ब्रह्मचर्य की चर्चा करते समय दशलक्षण पूजन में एक पंक्ति आती है:—

'संसार में विष-बेल नारी, तज गये योगीश्वरा।'

आजकल जब भी ब्रह्मचर्य की चर्चा चलती है, तो दशलक्षण पूजन की उक्त पंक्ति पर बहुत नाक-भौं सिकोड़ी जाती है। कहा जाता है कि इसमें नारियों की निंदा की गयी है। यदि नारी विष की बेल है तो क्या नर अमृत का वृक्ष है ? नर भी तो विष-वृक्ष है।

यहाँ तक कहा जाता है कि पूजाएँ पुरुषों ने लिखी हैं, अतः उसमें नारियों के लिये निंदनीय शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

तो क्या नारियाँ भी एक पूजन लिखें और उसमें लिख दें कि:—

'संसार में विष-वृक्ष नर, सब तज गईं योगीश्वरीं।'

भाई, ब्रह्मचर्य जैसे पावन विषय को नर-नारी के विवाद का विषय क्यों बनाते हो? ब्रह्मचर्य की चर्चा में पूजनकार का आशय नारी-निंदा नहीं है। पुरुषों को श्रेष्ठ बताना भी पूजनकार को इष्ट नहीं है। इसमें पुरुषों के गीत नहीं गाये हैं, वरन् उन्हें कुशील के विरुद्ध डाँटा है, फटकारा है।

नारी शब्द में तो सभी नारियाँ आ जाती हैं; जिनमें माता, बहिन, पुत्री आदि भी शामिल हैं। तो क्या नारी को विष-बेल कहकर माता, बहिन और पुत्री को विष-बेल कहा गया है?

नहीं, कदापि नहीं।

क्या इस छंद में 'नारी' के स्थान पर 'जननी', 'भगिनी' या 'पुत्री' शब्द का प्रयोग संभव है?

नहीं, कदापि नहीं। क्योंकि फिर उसका रूप निम्नानुसार हो जावेगा, जो हमें कदापि स्वीकार नहीं हो सकता।

'संसार में विष-बेल जननी, तज गये योगीश्वरा।'

या

'संसार में विष-बेल भगिनी, तज गये योगीश्वरा।'

या

'संसार में विष-बेल पुत्री, तज गये योगीश्वरा।'

यदि नारी शब्द से कवि का आशय माता, बहिन या पुत्री नहीं है तो फिर क्या है?

स्पष्ट है कि 'नारी' शब्द का आशय नर के हृदय में नारी के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले भोग के भाव से है। इसीप्रकार उपलक्षण से नारी के हृदय में नर के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले भोग के भाव भी अपेक्षित हैं।

यहाँ विपरीत सेक्स के प्रति आकर्षण के भाव को ही विष-बेल कहा गया है, चाहे वह पुरुष के हृदय में उत्पन्न हुआ हो, चाहे स्त्री के हृदय में। और उसे त्यागनेवाले को ही योगीश्वर कहा गया है, चाहे वह स्त्री हो; चाहे पुरुष। मात्र शब्दों पर न जाकर, शब्दों की अदला-बदली का अनर्थक प्रयास छोड़कर, उनमें समाये भावों को हृदयंगम करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

यदि हम शब्दों की हेरा-फेरी के चक्कर में पड़े तो कहाँ-कहाँ बदलेंगे, क्या-क्या बदलेंगे ? हमें अधिकार भी क्या है दूसरों की कृति में हेरा-फेरी करने का।

उक्त पंक्तियों में कवि का परम-पावन उद्देश्य अब्रह्म से हटाकर ब्रह्म में लीन होने की प्रेरणा देने का है। हमें भी उनके भाव को पवित्र हृदय से ग्रहण करना चाहिये।

ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्मरमणता साक्षात् धर्म है, सर्वोत्कृष्ट धर्म है। सभी आत्माएँ ब्रह्म के शुद्धस्वरूप को जानकर, पहिचानकर—उसी में जम जाय, रम जाय, और अनन्त काल तक तदरूप परिणमित रहकर अनंत सुखी हों, इस पवित्रभावना के साथ विराम लेता हूँ।

नया प्रकाशन

अध्यात्मप्रवक्ता डाँ० हुकमचंदजी भारिल्ल की बहुचर्चित पुस्तक
'धर्म के दशलक्षण' छपकर तैयार है
मूल्य : चार रुपये सजिल्द : पाँच रुपये

नई आवृत्तियाँ - वीतरागी-व्यक्तित्व : भगवान महावीर - ०.२५ पैसे
धर्म की क्रिया - २.०० रुपये — गुजराती पूजा संग्रह-४.०० रुपये
शास्त्र-स्वाध्याय (गुजराती) - २.०० रुपये — अर्चना - ०.४० पैसे

समल विमल न विचारिए

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत आत्मख्याति टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा १६ की टीका में समागत कलश नं० १६, १७, १८ एवं १९ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम्।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

प्रमाणदृष्टि से यह आत्मा अनेक अवस्थारूप मेचक भी है और एक अवस्थारूप अमेचक भी है। क्योंकि इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व है और अपने से अपने को एकत्व है।

त्रिकाल स्वभाव और वर्तमान अवस्था दोनों को एक ही साथ लक्ष में लेना प्रमाण है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय और अखंड आत्मा को एक ही समय में देखनेवाली प्रमाणदृष्टि से देखने पर यह आत्मा अनेक अवस्थारूप भी है और एक अवस्थारूप भी है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दृष्टि से आत्मा अनेक अवस्थारूप अर्थात् मेचक है और ध्रुवस्वभाव की दृष्टि से आत्मा एक अवस्थारूप अर्थात् अमेचक है। यहाँ ध्रुव सामान्यस्वभाव को भी एक 'अवस्था' शब्द से व्यक्त किया है।

आत्मा के अवलंबन से प्रगट होनेवाली निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय को भेदरूप होने से व्यवहार कहा। भेद के लक्ष्य से राग होता है, इसलिये शुद्धपर्याय को भी मेचक अर्थात् मलिन कहा है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अपेक्षा आत्मा तीनरूप है, अनेक है, भेदरूप है, मलिन अर्थात् मेचक है—यह व्यवहार है। और ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा आत्मा एकरूप है, अभेद है, निर्मल अर्थात् अमेचक है-यह निश्चय है।

अनेक और एक दोनों को जानना प्रमाण है। प्रमाण अर्थात् द्रव्य और पर्याय दोनों का प्रकृष्टरूप से माप करनेवाला ज्ञान।

एकरूप आत्मा की सेवा करना निश्चय है और निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदरूप आत्मा की सेवा करना व्यवहार है।

जिस ओर रुचि होती है, लोग उसी को बारंबार रटते हैं; अतः चैतन्यस्वरूप की रुचि करके निरावलंबी आत्मस्थिरता के लिये बारंबार श्रवण, मनन, स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय के साथ-साथ विचार भी करना चाहिये।

श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है —

'वाँचे पण नहिं करे विचार, ए समझे नहिं सधलो सार'।

पंडित टोडरमलजी ने भी लिखा है कि जैनधर्म के गाढ़ श्रद्धानी श्रोता व्यवहार-निश्चयादि का स्वरूप भलीभाँति जानकर जिस अर्थ को सुनते हैं, उसे यथावत् निश्चय जानकर अवधारण करते हैं तथा जो आत्मज्ञान द्वारा स्वरूप का आस्वादी हुआ है, वह जिनधर्म के रहस्य का श्रोता है।

अब, नय विवक्षा कहते हैं :—

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

आत्मा एक है, तथापि व्यवहारदृष्टि से देखा जाये तो तीन स्वभावरूपता के कारण अनेकाकाररूप अर्थात् मेचक है, क्योंकि वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र—इन तीन भाव से परिणमन करता है।

भगवान आत्मा एकस्वरूप है—इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी आत्मा मिलकर एक हों अथवा आत्मा में रहनेवाले अनंत गुण सर्वथा एक हो गये हों। प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्रत; भगवान है; शरीरादि सर्व परपदार्थों से भिन्न, ज्ञानादि अनंतगुणों का अखंड एक पिंडरूप हैं; फिर भी यदि व्यवहारदृष्टि से देखा जाये तो ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुणों से अनेकाकाररूप दिखायी देता है।

आत्मा में अनंत गुण हैं, किंतु उनमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीन गुण मुख्य हैं। पाण्डे राजमलजी तो कलश टीका में कहते हैं कि इनका भेद करने पर एक जीव तीन प्रकार का होता

है, इसलिये मलिन कहने का व्यवहार है। आत्मा को तीन भेदरूप लक्ष्य में लेने से विकल्परूप रागमिश्रित मलिनता होती है। ज्ञानी भेद को जानते तो हैं, किंतु उसका लक्ष्य गौण करके त्रिकाल स्थायी ध्रुवस्वभाव के लक्ष्य से एकरूप आत्मा की ही श्रद्धा करते हैं। भेद के लक्ष्य से एकरूप आत्मस्वभाव में स्थिरता नहीं की जा सकती। एकस्वरूप में भेद करनेवाली दृष्टि मलिन है, मेचक है।

भाई! यदि तुझे स्वतंत्र आत्मस्वभाव की श्रद्धा करना हो तो निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र के खंड करके एकरूप स्वभाव का विरोध मत कर, भेदरूप दृष्टि से यथार्थ श्रद्धा प्रगट नहीं होती।

जैसे सोना पीला, चिकना, भारी इत्यादि अनंतगुणों से परिपूर्ण एकरूप है, परंतु उसके भिन्न-भिन्न गुणों के विकार से संपूर्ण सोना यथार्थतः ख्याल में नहीं आता; उसीप्रकार आत्मा में अनंतगुण हैं, किंतु उनके भेदरूप विचार से संपूर्ण वस्तु ख्याल में नहीं आ सकती। भेद से विचार करने पर राग होता है, उसमें मन का अवलंबन आता है, भेद के आधार से निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती।

एकरूप आत्मा को तीनरूप परिणमित होता हुआ कहना व्यवहार है, असत्यार्थ है। भेद द्वारा अभेद शुद्धस्वभाव नहीं जाना जा सकता और जाने बिना उसमें स्थिर नहीं हुआ जा सकता; इसलिये निश्चय से अनेकत्व अभूतार्थ है। एकरूप अभेद वस्तु का लक्ष्य करना ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कारण है।

आत्मा को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कहना व्यवहार है। भेद को मलिन कहने का व्यवहार है। यहाँ मलिनता से आशय रागरूप मलिनता से नहीं है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायें निर्मल होते हुए भी उन्हें भेद की अपेक्षा मलिन कहने का व्यवहार है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से आत्मा एक है। जब इस नय को प्रधान करके कहा जाता है, तब पर्यायार्थिकनय गौण हो जाता है, इसलिये एक को तीनरूप परिणमित होता हुआ कहना सो व्यवहार हुआ, असत्यार्थ हुआ।

इसप्रकार आत्मा को व्यवहारनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणामों के कारण मेचक कहा जाता है।

अब परमार्थनय से कहते हैं:—

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैकक:।
सर्वभावांतरध्वंसिस्वभावत्वादमेचक: ॥१८॥

शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये तो प्रगट ज्ञायकत्व ज्योतिमात्र से आत्मा एकस्वरूप है, क्योंकि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से आत्मा का स्वभाव सर्व अन्य द्रव्यों के स्वभाव तथा अन्य के निमित्त से होनेवाले विभावों को दूर करनेरूप है; इसलिये वह अमेचक है, शुद्ध एकाकार है।

भेदाभेदस्वरूप आत्मा में भेद को गौण करके अभेदद्रव्य की दृष्टि से देखने पर आत्मा शुद्ध एकाकार है। व्यवहाररत्नत्रय के राग और भेद से रहित आत्मस्वभाव राग को उत्पन्न करनेवाला नहीं है, अपितु सर्व विभावों को ध्वंस करनेवाला है। अभेद द्रव्यदृष्टि के विषय के अतिरिक्त अन्य किसी में विकार को नाश करने की ताकत नहीं है। पारिणामिक भावस्वरूप ध्रुव चैतन्यसत्ता के अवलंबन से विकार उत्पन्न नहीं होते; अत: शुद्धनय से आत्मस्वभाव को विभाव का नाश करनेवाला कहा है।

इससे पूर्व के कलश में भेद को जानना व्यवहार है—ऐसा कहा था, परंतु उससे लाभ होना नहीं कहा था। समस्त भेदों का निषेध करनेवाले स्वभाव से आत्मा अखंड एकवस्तु है। एकसमय में अनंतानंत गुणों की अखंड एक पिंडरूप वस्तु को दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमता हुआ देखना व्यवहार है।

आत्मा में अनंत गुण हैं। अनंत-अनंत..... जिसमें अंतिम अनंत भी नहीं आता और यह गुण अंतिम है ऐसा भी नहीं आता—ऐसा प्रगट ज्ञायक-ज्योतिस्वरूप आत्मा अन्य द्रव्य के स्वभाव और उसके निमित्त से होनेवाले पुण्य-पापरूप विकारों का नाशकस्वभावी होने से अमेचक शुद्ध एकाकारस्वरूप है। उसमें बंध-मोक्षरूप पर्याय एवं गुणों का भेद नहीं है।

जब अंतर्मुख होकर कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध और विकाररहित एकरूप अखंडस्वभाव का आश्रय किया तभी पर्याय में कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध और विकार का अभाव हो जाता है। स्वभाव के अवलंबन सिवाय विकार के नाश का अन्य कोई उपाय नहीं है। संयोग, निमित्त, राग अथवा भेदरूप व्यवहार से मोक्षमार्ग नहीं होता; अपितु स्वभाव के अवलंबन से राग का अभाव होकर मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

जैसे मिट्टी को बर्तन आदि अनेक पर्यायों से देखना अशुद्धनय है और एक माटीरूप देखना शुद्धनय है; उसीप्रकार भगवान आत्मा को निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायों

से देखना अशुद्धनय है और प्रगट ज्ञायक-ज्योतिस्वरूप देखना शुद्धनय है। शुद्धनय कहो, अभेद कहो, एकरूप कहो, द्रव्य कहो, द्रव्यार्थिकनय का विषय कहो, अमेचक कहो—सब एकार्थवाची हैं। इसके विपरीत अशुद्धनय, भेद, अनेकरूप, पर्याय, पर्यायार्थिकनय का विषय और मेचक-एकार्थवाची हैं।

शुद्धनय के विषयभूत आत्मा का स्वभाव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पर्यायों के भेद को भी ध्वंस करनेवाला है। अभेद की दृष्टि में भेद नहीं दिखता; अतः आत्मस्वभाव भेद का अभाव करनेरूप है। परमार्थ दृष्टि से अर्थात् अनंत आनंदकंदरूप परमपदार्थ की दृष्टि से निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट होती है; तथापि स्वभाव में तो पर्याय-भेद का भी अभाव है। अशुद्धनय के विषय का अभाव करना एकरूपस्वभाव का स्वभाव है।

अभेद द्रव्य की दृष्टि में विकार उत्पन्न करने की ताकत नहीं है और विकार में अभेद स्वभाव उत्पन्न करने की ताकत नहीं है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद से आत्मा का लक्ष्य करनेवाले विकल्प में चैतन्य स्वभाव को उत्पन्न करने की ताकत नहीं है; अपितु एकरूप प्रगट ज्ञायक-ज्योति के अवलंबन से भेदरूप विकल्पों का नाश हो जाता है।

१४वीं गाथा में दर्शन का, १५वीं गाथा में ज्ञान का और यहाँ १६वीं गाथा में दर्शन-ज्ञान-सहित थिरता का अधिकार (प्रकरण) है। एकरूप स्वभाव में थिरता करना है; पर स्वभाव की दृष्टि, वेदन या अनुभव किये बिना उसमें थिरता कैसे की जा सकती है?

अहो! दिगंबर संतों ने तो केवलज्ञान को टिका रखा है। व्रतादि के रागरूप अशुद्ध परिणाम की तो बात नहीं; परंतु निर्मल पर्याय के भेद को भी मलिन कहने का व्यवहार है।

अज्ञानी व्यवहार के अवलंबन से कल्याण होना मानते हैं; परंतु आचार्यदेव कहते हैं कि अरे भगवान! परमार्थ स्वभाव के अवलंबन बिना तीन काल में भी कल्याण नहीं होगा। व्यवहार और भेद के अवलंबन से तो मलिनता ही होगी और अभेद स्वभाव में अंतर्मुख होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और केवलज्ञान प्रगट होगा।

भूतार्थ स्वभाव की दृष्टि होने के बाद भी राग तो होता है न? ऐसा कहकर अज्ञानी राग पर जोर देते हैं—परंतु उन्हें स्वभाव की रुचि नहीं है, राग की ही रुचि है। रागादि विकार तो

औदयिक भाव हैं, वे स्वयं संसार हैं, और उनका कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, उनमें विकार का नाश करने की ताकत नहीं है; वह ताकत तो अभेद द्रव्य में ही है।

भेददृष्टि को गौण करके अभेद दृष्टि से देखा जाए तो आत्मा एकाकार ही है, वही अमेचक है।

भेददृष्टि को गौण करना अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का भेद गौण करना। अखंड ज्ञायकभाव की दृष्टि में भेद की कोई कीमत नहीं होना ही उसे गौण करना है। भेद को ध्वंस करने के स्वभाव का आशय पर्याय के होते हुए भी उसे गौण करने से है। कीमत करने लायक तो अखंड आनंदस्वरूप शुद्ध वस्तु ही है। पर्याय को गौण किये बिना द्रव्य की दृष्टि नहीं होती और द्रव्यदृष्टि होने पर सम्यग्दर्शनादि पर्यायें भी गौण हो जाती हैं, क्योंकि अभेद में भेद नहीं है।

१६वें कलश में प्रमाण से आत्मा का कथन किया, १७वें कलश में उसे व्यवहार से मेचक और १८वें कलश में निश्चय से अमेचक कहा है।

१९वें कलश में कहते हैं कि यह सब चिंता मिटाकर जैसे साध्य की सिद्धि हो वैसा करना चाहिये।

आत्मनश्चिंतयैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा॥१९॥

यह आमा मेचक है तथा अमेचक है ऐसी चिंता से बस होओ। साध्य-आत्मा की सिद्धि तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही होती है, अन्य प्रकार से नहीं।

मैं परमार्थ से अभेद हूँ और व्यवहार से भेदरूप हूँ—ऐसे विकल्पों से बस होओ। स्वभाव के अवलंबन से होनेवाला निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन ही मोक्षमार्ग है। इसलिये पर्याय भेदों से भेदरूप, अनेकाकार मेचक हूँ और द्रव्यस्वभाव से अभेद एकाकार अमेचक हूँ—ऐसी चिंता मत करो।

अभेद अमेचक ध्रुव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ध्येय बनाकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन करने से साध्य-सिद्धि है। व्यवहाररत्नत्रय के राग अथवा भेद से साध्य-सिद्धि नहीं होती। कहीं-कहीं भिन्न साध्य-साधन कहकर व्यवहार को साधन भी कहा है। वहाँ राग की मंदतारूप योग्यता का ज्ञान कराया है।

प्रवचनसार में ४७ नयों में तो एक ही समय में ज्ञाननय और क्रियानय अथवा कालनय और अकालनय से मुक्ति कही है। वहाँ किसी को ज्ञाननय और किसी को क्रियानय अथवा किसी को कालनय और किसी को अकालनय से मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है। एक ही व्यक्ति को एक ही समय में भिन्न-भिन्न अपेक्षा से ज्ञाननय एवं क्रियानय अथवा कालनय एवं अकालनय से मुक्ति कही जाती है। स्वकाल में मुक्ति होती है, यह कालनय; और स्वभाव के आश्रयरूप पुरुषार्थ से मुक्ति होती है, यह अकालनय—इसप्रकार एक ही समय में एक ही जीव के संबंध में भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से कथन किया जाता है।

आत्मा के शुद्धस्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अथवा सर्वथा मोक्ष साध्य है। वस्तु तो मुक्तस्वरूप है ही, परंतु पर्याय में उसकी साक्षात् प्राप्ति अर्थात् पर्याय में मोक्षदशा प्रगट करना साध्य है। ध्येय तो मुक्तस्वभावी भगवान आत्मा ही है परंतु पर्याय में मोक्षदशा प्रगट करना साध्य है।

प्रश्न—इस काल में तो मोक्ष होता ही नहीं, फिर उसके उपायरूप रत्नत्रय का उपदेश क्यों देते हो ? अभी तो व्यवहार का ही उपदेश दो, जिससे स्वर्ग में जाएँगे और फिर निश्चय को समझकर मोक्ष का उपाय करेंगे ?

उत्तर—भाई ! दृष्टि की अपेक्षा तो अभी भी मोक्ष है। अखंड मुक्तस्वभाव को दृष्टि में लेने से दृष्टि की अपेक्षा मोक्ष हो जाता है। यद्यपि मुक्तस्वभाव को देखनेवाले ज्ञानस्वभाव से तो आत्मा स्वयं ही पूर्ण कृतकृत्यस्वरूप मुक्त ही है तथापि सर्वथामुक्ति तो केवलज्ञान एवं सिद्धदशा प्रगट होने पर होती है।

परिपूर्ण निर्मल मुक्तस्वभाव को अखंडरूप से लक्ष्य में लेने के पश्चात् भी भूमिकानुसार जैसा राग होता है, और उसमें क्या निमित्त होता है, इसे ज्ञानी भली-भाँति जानते हैं; किंतु बाहर से माप करनेवाले अज्ञानी को भीतर के गुणों और बाह्य में होनेवाले भूमिकानुसार राग की खबर नहीं रहती।

सम्यग्दर्शन साधक अवस्था है और पूर्ण निर्मलस्वभाव की पूर्ण निर्मल प्रगट अवस्था साध्य है। ज्ञानी द्रव्यदृष्टि से अपने मुक्तस्वभाव को जानता है, किंतु पर्याय की अपेक्षा तो पूर्ण निर्मलदशा प्रगट करने पर मोक्ष होता है।

मेचक और अमेचक का विचार मात्र करते रहने से पर्याय में आत्मा की साक्षात्

प्राप्तिरूप साध्य की सिद्धि नहीं होती। पंडित बनारसीदासजी ने नाटक समयसार में इसी कलश के हिंदी अनुवाद में लिखा है—

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहिं और॥२०॥

(नाटक समयसार, जीवद्वार)

एक में भेद करने से राग होता है। प्रथम भेद जानने में आता तो है; किंतु अभेद के लक्ष्य से एक का ही सेवन करना चाहिये। पर्यायदृष्टि से समल-विमल के भेद न करके मैं एकाकार ज्ञायकस्वरूप हूँ, कृतकृत्य परमात्मरूप हूँ—इसप्रकार निरपेक्ष अखंडस्वभाव को जानना, देखना और उसमें रमणता करना ही साध्य-सिद्धि का मार्ग है, और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

दर्शन अर्थात् शुद्ध त्रिकाली आत्मा का अवलोकन अर्थात् निर्विकल्प प्रतीतिरूप श्रद्धा, ज्ञान अर्थात् शुद्धस्वभाव का प्रत्यक्ष वेदन होना, जानना और चारित्र अर्थात् शुद्धस्वभाव में थिरता—इनसे ही साध्य की सिद्धि होती है, यही मोक्षमार्ग है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं है।

राग और इंद्रियों की अपेक्षारहित पूर्णानंद प्रभु को प्रत्यक्ष जानने से साध्य-सिद्धि होती है।

देखो! यहाँ यही मोक्षमार्ग है, अन्य मोक्षमार्ग नहीं है—ऐसा कहा है; दो मार्ग होते हैं—ऐसा नहीं कहा। मोक्षमार्ग दो होते ही नहीं, उनका निरूपण दो प्रकार से होता है।

प्रश्न—पहले तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मेचक, व्यवहार कहा था। और अब दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही साध्य-सिद्धि होती है—ऐसा क्यों कहा?

व्यवहारीजन भेद से समझते हैं इसलिए निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से समझाया है, वस्तु तो अभेद ही है। ८वीं गाथा में भी कहा है कि व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है। आचार्य को भी भेद का विकल्प आया और शिष्य भी भेद से समझता है—इसलिये भेद से समझाते हैं, परंतु गुरु और शिष्य दोनों को व्यवहार अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। व्यवहार आये बिना रहता नहीं, परंतु उससे धर्म नहीं होता। इसलिये भेद से अभेद को समझाया है, दृष्टि का विषय तो अभेद ही है। ✱

सततमनुभवामः शुद्धमात्मानमेकम्

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की १८वीं गाथा में समागत कलश नं० ३१ से ३५ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन संसारस्य निरोधनम्॥३१॥

भावकर्म के निरोध से द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से संसार का निरोध होता है।

श्री पद्मप्रभमलधारिदेव महान संत मुनि थे। वह कहते हैं कि भावकर्म के निरोध से द्रव्यकर्म का निरोध होता है। देखो! यदि द्रव्यकर्म के उदय के कारण विकार होता हो तो आत्मा भावकर्म का निरोध नहीं कर सकता। यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ चैतन्य-सन्मुख झुका, वहाँ भावकर्म का निरोध हो जाता है और उसका निरोध होने पर द्रव्यकर्म का भी निरोध हो जाता है।

वास्तव में अपने विपरीत पुरुषार्थ से जो भावकर्म उत्पन्न हो गया उसका तो निरोध कहीं हो नहीं सकता, क्योंकि उसका तो उत्पाद हो ही गया और उत्पाद का उसी समय तो व्यय होता ही नहीं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि चैतन्य में एकाग्र होने पर भावकर्म की उत्पत्ति ही नहीं हुई, इसलिये आत्मा ने भावकर्म का निरोध किया—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

'मैं शुद्ध चिदानंद चैतन्य हूँ'—ऐसे भानपूर्वक जिस समय उसमें एकाग्र हुआ, उस समय रागादि भावकर्म उत्पन्न ही नहीं हुआ, इस अपेक्षा से आत्मा ने भावकर्म का निरोध किया—ऐसा कहा जाता है। और जहाँ भावकर्म ही नहीं हुआ वहाँ द्रव्यकर्म भी नहीं आया। द्रव्यकर्म आनेवाला था और रुक गया—ऐसा नहीं है, किंतु उस समय वह आनेवाला था ही नहीं, इसलिये उसका निरोध कहा जाता है; और जड़कर्म के अभाव से संसार का निरोध हो जाता है। शास्त्र में कहते हैं कि 'विकार को रोको' इसका अर्थ ऐसा है कि 'निर्विकल्प स्वभाव में ठहरो।'

संज्ञानभावपरिमुक्तविमुग्धजीवः,
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्तिमार्गमणुमप्यभिवांछितुं नो,
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके ॥३२॥

जो जीव सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रांत) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी इच्छा करना नहीं जानता, उसको लोक में (कोई) शरण नहीं है।

श्रीगुरु की सेवा के प्रसाद से जो शुद्धात्मा को जानता है, वह तो मुक्ति प्राप्त करता है—ऐसा पहले ही कहा। अब यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो जीव शुद्धात्मा को नहीं जानता, उसे तो संसार में कहीं भी शरण नहीं है।

'मैं रागरहित चैतन्य ज्ञाता दृष्टा हूँ' ऐसा जो नहीं जानता और राग से ही लाभ मानता है; वह तो निमित्त और राग की ही वाँछा करता है, किंतु चैतन्य के आश्रयरूप मोक्षमार्ग की वाँछा नहीं करता। चैतन्य का भान नहीं और शुभाशुभ राग में ही जो जीव विमुग्ध हो गया है, उसके सम्यग्ज्ञान का भाव ही नहीं; वह तो शुभ और अशुभ में ही लीन है। जो शुभ से लाभ मानता है, उसके तो शुभ के साथ मिथ्यात्व का अशुभभाव भी साथ ही है। ऐसा जीव राग से लाभ मानकर राग को ही वाँछता है और मोक्षमार्ग की वाँछना को तो जानता भी नहीं—उसको तो इस लोक में कोई शरण ही नहीं है।

सम्यग्ज्ञान क्या है, इस तरफ जिसका लक्ष ही नहीं और व्यवहार के आदर से ही जो लाभ मानता है, उसके तो मोक्षमार्ग की वाँछा भी नहीं, उसका तो लक्ष ही राग में पड़ा है। जिसको राग की वाँछा है, उसको तो निश्चय और व्यवहार में से एक का भी भान नहीं है। जिसको रागरहित चैतन्य का भान है, व्यवहार के आश्रय से लाभ नहीं—ऐसा भान है; उसको ही निश्चय और व्यवहार का भान है। ऐसे जीव को तो चैतन्यस्वभाव का शरण है, वह चैतन्य की शरण से मुक्ति प्राप्त करता है।

और अज्ञानी तो व्यवहार में मूढ़ है, उसे इस लोक में कोई शरण नहीं है। शरणभूत चैतन्य का तो उसे भान नहीं, इसलिये उसको जगत में कोई शरण नहीं। जिसको आत्मा का सम्यग्ज्ञान तो नहीं है, तथा सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि की भावना भी नहीं है—कामना भी नहीं है

और वह बाह्य क्रियाकांड से अथवा राग से लाभ मानकर उसी की वाँछा कर रहा है; वह जीव शुभाशुभ कर्म को करता है, किंतु मोक्षमार्ग की वाँछा नहीं करता। अज्ञानी को एक समय में शुभ-अशुभ दोनों बतलाये। दयादि शुभभाव के समय भी मिथ्यात्वरूप अशुभ तो उसके साथ ही है। ऐसे अज्ञानी को चैतन्याश्रित मोक्षमार्ग की भावना नहीं है, उसको इस जगत में कोई शरण नहीं है। अहो! टीकाकार ने कितना सरस श्लोक कहा।

य: कर्मशर्मनिकरं परिहृत्यं सर्वं,
नि:कर्मशर्मनिकरामतवारिपूरे।
मज्जन्तमत्यधिकचिन्मयमेकरूपं,
स्वं भावमद्वयममं समुपैति भव्य: ॥३३॥

जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है, वह भव्यपुरुष निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए इस अतिशय चैतन्यमय, एकरूप, अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है।

प्रतिकूलता की तो बात ही नहीं ली; किंतु पैसा, स्त्री इत्यादि में सुख की कल्पना को भी जो परिहरण करता है, व्यवहाररत्नत्रय का शुभ विकल्प भी कर्म की ओर के झुकाववाला भाव है, उसमें भी सुख की कल्पना को जो छोड़ता है; वह भव्यजीव निष्कर्म सुख के समूहरूपी अमृतसरोवर में मग्न होकर निजभाव को प्राप्त करता है। कर्मजनित सुख के सामने यहाँ निष्कर्म सुख की बात है। व्यवहार के पुण्यपरिणाम में जो जीव संतोषित हो जाता है, वह जीव कर्मजनित सुख को छोड़ता नहीं है अर्थात् पर में सुख की कल्पना तो छोड़ता नहीं है और चैतन्य की आनंददशा से वंचित ही रहता है तथा जो जीव उस परभाव में सुख की कल्पना को छोड़ देता है, वह भव्यपुरुष निष्कर्म (कर्मरहित) सुखसमूहरूपी अमृतसरोवर में मग्न होकर अतिशय चैतन्यमय एकरूप अद्वितीय निजभाव को पाता है।

असति सति विभावे तस्य चिंतास्ति नो न:
सततमनुभवाम: शुद्धमात्मानमेकम्।
हृदयकमलसंस्थं सर्वकर्मप्रमुक्तं
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात् ॥३४॥

हमारे आत्मस्वभाव में विभाव असत् होने से उसकी हमें चिंता नहीं है। हम तो हृदय-

कमल में स्थित, सर्वकर्म से विमुक्त, एक शुद्ध आत्मा को सतत् अनुभव करते हैं, कारण कि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है।

हमें शरीरादि की तो चिंता है ही नहीं, वह तो जड़ के कारण से परिणमन करते हैं; और हमारे शुद्धस्वभाव में विभाव भी असत् है, अतः उसकी भी हमें चिंता नहीं है। हमारी दृष्टि में तो त्रिकाल शुद्धस्वभाव की ही अस्ति है, उसमें विभाव की नास्ति है। एक समय का संसार पर्यायदृष्टि से है, वह स्वभावदृष्टि से नहीं है—ऐसा अनेकांत स्वरूप है। आत्मा के स्वभाव में शरीरादि तो है ही नहीं, परंतु उसमें विभाव भी नहीं है, इसलिए हमें उस विभाव की भी चिंता नहीं है। हम तो शुद्धस्वभावी हैं, विभाव हमारे नहीं हैं। जब हमारे स्वभाव में विभाव है ही नहीं, तो फिर स्वभाव की एकाग्रता में हमें उस विभाव के टालने की चिंता भी क्यों हो?

शरीर, पैसा आदि की तो चिंता है नहीं तथा विकार भी स्वभाव में नहीं है, अतः उसकी भी चिंता नहीं है। 'विकार है और उसे टालूँ' ऐसा विकल्प भी चिंता है। चूँकि हमारे शुद्ध स्वभाव में विकार है ही नहीं, अतः हमें उसकी भी चिंता नहीं। ऐसे स्वभाव को जो स्वीकार करे उसे सम्यग्दर्शन होता है। इसप्रकार प्रथम धर्म करने की यह बात है।

'त्रिकाली स्वभाव में विकार नहीं' ऐसी श्रद्धा करने पर पर्यायबुद्धि का त्याग हो जाता है, उसका नाम मिथ्यात्व का त्याग है। यहाँ तो मुनिराज कहते हैं कि अहो! हमारे चिदानंद स्वभाव की अस्ति में विभाव है ही नहीं, अतः हमें उसकी चिंता नहीं। देखो! ऐसे स्वभाव की दृष्टि के बल में जिसने विभाव को असत् स्वीकार किया उसको तीव्र विभाव होता ही नहीं। चाहे जैसा तीव्र विभाव करे और कहे कि हमारे स्वभाव में विभाव नहीं है—ऐसी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो स्वभाव की दृष्टि के जोर से विकार भासित ही नहीं होता, ऐसे दृष्टिवंत की पर्याय में से विकार अल्पकाल में टल ही जाता है। स्वभाव की भावना में एकाग्रता है; वहाँ विभाव के समक्ष देखता ही नहीं, इसलिये विभाव है ऐसी तो चिंता ही नहीं और विभाव को टालूँ ऐसी भी चिंता नहीं; स्वभाव की ही भावना है। बाह्य में शरीरादि का क्या होगा? संघ का और शिष्यों का क्या होगा? ऐसी चिंता तो नहीं ही है, परंतु विभाव की भी चिंता नहीं; वहाँ तो चैतन्य की ही भावना है।

अहो! स्वभाव में विभाव का अभाव है, स्वभाव की दृष्टि में पर्यायदृष्टि ही नहीं है।

स्वभाव की दृष्टि में विभाव असत् है, इसलिये स्वभावदृष्टिवाले को उसकी चिंता नहीं। 'विभाव की चिंता नहीं' ऐसा नास्ति से कहा और 'विभावरहित शुद्धआत्मा का सतत् अनुभव है' ऐसा अस्ति से कहा। हमारे हृदय-कमल में सर्वमल से विमुक्त एक शुद्धात्मा विराजित है, उसी को हम सदा अनुभव करते हैं, वही मुक्ति का उपाय है, तदतिरिक्त अन्य कोई मुक्ति का उपाय नहीं। जो भव्यजीव धर्म करना चाहते हों वे भी अपने आत्मा को ऐसा ही शुद्ध अनुभव करो।

अज्ञानी पर की चिंता भले ही करता रहे, परंतु उसमें कुछ भी फेरफार करने में समर्थ नहीं है। विकार की चिंता करने पर राग की उत्पत्ति होती है, उसमें मुक्ति नहीं हो सकती। हृदय-कमल में स्थित शुद्ध आत्मा को एक को ही हम सतत् अनुभव करते हैं।

शरीरादि का तो आत्मा में अभाव है, रागादि भी नहीं, और निर्मलपर्याय की अनेकता के भेद का भी अनुभव नहीं करते, पर्याय तो स्वभाव के एकपने का ही अभिनंदन करती है; अतः हम तो एक शुद्धात्मा को ही सतत् अनुभव करते हैं। ऐसे चैतन्यस्वभाव के अनुभव के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से मुक्ति नहीं है.... नहीं है।

अनुकूल निमित्तों की खोज और प्रतिकूल निमित्तों के पलायन से मुक्ति नहीं है, विकार के समक्ष देखने से भी मुक्ति नहीं, निर्मलपर्याय के भेद पर लक्ष करने से भी मुक्ति नहीं; एकरूप शुद्ध चैतन्य आत्मा के अनुभव से ही मुक्ति है। इसलिये हम तो एक शुद्धात्मा को ही सतत् रूप से अनुभव करते हैं।

भविनि भवगुणाः स्युः सिद्धजीवेपि नित्यं,
निजपरमगुणाः स्युः सिद्धिसिद्धाः समस्ताः।
व्यवहरणनयोऽयं निश्चयान्नैव सिद्धि-
र्न च भवति भवो वा निर्णयोऽयं बुधानाम्॥३५॥

संसारी में सांसारिक गुण होते हैं और सिद्धजीव में सदा समस्त सिद्धि सिद्ध (मोक्ष से सिद्ध अर्थात् परिपूर्ण हुए) निज परमगुण होते हैं—इसप्रकार व्यवहारनय है। निश्चय से तो सिद्ध भी नहीं है और संसार भी नहीं है। यह बुध-पुरुषों का निर्णय है।

सांसारिक गुण अर्थात् विकारी पर्यायें।

निज परमगुण अर्थात् ज्ञान, आनंद आदि पर्यायों की पूर्णता।

विकार को यहाँ संसारी का गुण कहा है।

जिसप्रकार अफीम का गुण कड़वाहट है, उसीप्रकार संसारी का गुण क्या? एकसमय पर्यंत का विकार। और सिद्धजीवों की केवलज्ञानादि पर्यायें उनके परमगुण हैं—इसप्रकार पर्यायें हैं, वह व्यवहार है। सांसारिक गुणों का काल एकसमय का है और आत्मा चैतन्यमूर्ति त्रिकाल है। एकसमय के विकार को संसारी का गुण कहा और निर्मलदशा को मुक्तजीव का गुण कहा, परंतु ऐसे पर्याय-भेद को जानना सो व्यवहार है। निश्चय से तो द्रव्यस्वभाव में मुक्ति भी नहीं है, और संसार भी नहीं है। त्रिकालस्वभाव की अपेक्षा से एकसमय की पर्याय अभूतार्थ है, इसलिये त्रिकालस्वभाव की निश्चयदृष्टि से आत्मा को संसार या मुक्ति नहीं है; वह तो एकरूप ध्रुव आनंदकंद है—ऐसा बुध-पुरुषों का ज्ञानियों का निर्णय है। देखो! यहाँ स्वभावदृष्टिवालों को बुध-पुरुष कहा है।

मुक्तपर्याय भी एकसमय की है और संसारपर्याय भी एकसमय की है। यह दोनों पर्यायें व्यवहारनय का विषय है। निश्चयनय के विषय में तो एकरूपध्रुवचैतन्य आनंदकंद आत्मा ही है, उसमें संसार और मोक्ष जैसे भेद हैं नहीं। यह ज्ञानी, मुनि, केवली भगवंतों का निर्णय है। जो ऐसा निर्णय करे, वही बध-पुरुष है, अन्यथा अबुध है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(१४) आहारमार्गणा— जीव एक देह छोड़कर दूसरी देह धारण करता है, तब मार्ग में जीव अनाहारक होता है। केवलीसमुद्घात आदि कोई समुद्घात तथा अयोगी (१४वाँ) गुणस्थान के समय अनाहारक होता है। बाकी के सभी संसारजीव आहारक हैं। आहार लेने की ऐसी योग्यता और अनाहारक की योग्यता दोनों अशुद्धनय के विषय हैं। दृष्टि में आहार और अनाहार दोनों नहीं हैं, दोनों छोड़नेयोग्य हैं, शुद्धस्वभाव ऐसे भेद से रहित हैं।

इसप्रकार चौदह मार्गणा का स्वरूप जानना चाहिये।

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि 'सारे अवसर आ गये हैं। ऐसा सत् समझने का अवसर मिलना दुर्लभ है, इसलिये तेरे उपयोग को चैतन्य (अंतर) में झुका।'

लेकिन अंतर क्या, राग क्या, निमित्त क्या, इनके जाने बगैर उपयोग किसप्रकार झुके? जीव की पर्याय में पराधीनता स्वयं के स्वतंत्र कारण से है—ऐसा निश्चित करे तो आत्मा त्रिकाली शुद्ध स्वयंसिद्ध तत्त्व है, ऐसा निर्णय करने का प्रसंग आता है।

यहाँ चौदह मार्गणास्थान जीव के स्वयं के कारण से है—ऐसा निर्णय कराकर शुद्ध स्वभाव में ऐसे भेद नहीं हैं, इसप्रकार भी ज्ञान कराया है।

इस गाथा में जो कथन है, वह धवल आदि सिद्धांतों के बीजपद की सूचनारूप से है। भगवान की दिव्यध्वनि में से षटखंड आगम रचे गये हैं और उन पर धवल, महाधवल, जयधवल टिकायें हैं। ये शास्त्र मूडबिद्री में दर्शनमात्र के लिये थे। अब ये प्रकाशित हो गये हैं।

उनमें कहा हुआ सार इस गाथा के तीन पद में कहा है।

'मग्गणगुणठाणेहि य, चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी' सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥१३॥

इन तीन पद में अशुद्धनय से मार्गणास्थान तथा गुणस्थानों के भेद बताये हैं। टीकाकार खुलासा करते हैं कि धवल, महाधवल और जयधवल में तथा गोम्मटसार में मार्गणास्थान, गुणस्थान आदि का जो अधिकार है, उसके बीजपद की सूचना इन तीन पद में की है। यहाँ यह भावमार्गणा का अधिकार है। इससे सिद्ध होता है कि धवल में भी भावमार्गणा के अधिकार का विस्तार है। इसप्रकार व्यवहार का बीज बताया।

अब निश्चय का बीज बतलाते हैं। निश्चय का अधिकार एक पद में बताते हैं कि 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' शुद्ध आत्मतत्त्व को प्रकाशित करनेवाले पंचास्तिकाय, प्रवचनसार तथा समयसार नामक तीन प्राभृत हैं, उनमें विद्यमान अध्यात्म के बीज इस चौथे पद द्वारा सूचित किये हैं। प्रत्येक जीव भव्य हो अथवा अभव्य हो, साधक हो अथवा बाधक हो, और कोई शताधिक गायों को काटनेवाला हो; तब भी उसके विकार एकसमय की पर्याय में हैं, और वे सब जीव (निगोद से लेकर सर्व संसारीजीव) शुद्धनय से शुद्ध ही हैं। ऐसे शुद्धात्मा का श्रद्धा-ज्ञान जीव करे तो धर्म प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करता है। अर्थात् इस तेरहवीं गाथा में व्यवहार और निश्चय का स्वरूप समझा दिया है।

यहाँ बीज कैसा है ? बड़ का बीज फटकर बड़वृक्ष बड़ा होता है। यहाँ बीज है, उसका विस्तार गोम्मटसार, धवल, महाधवल, जयधवल में है।

व्यवहारशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र किसको कहना ? वह भी यहाँ बताया। भगवान की वाणी अनुसार मूल शास्त्र षट्खंड आगम रचे गये। उसके अनुसार धवल, जयधवल, महाधवल, गोम्मटसार तथा दूसरे ग्रंथ रचे गये। उनमें मुख्यतया व्यवहार का कथन है। और आत्मा अखंड शुद्धनिश्चय है; ऐसी दृष्टि का कथन पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार ऐसे तीन प्राभृत में आता है। इसप्रकार सर्वज्ञ द्वारा कथित निश्चय-व्यवहार के ग्रंथों का स्वरूप बताया। इससे विरुद्ध हो तो वह भगवान की वाणी अनुसार नहीं है, किंतु खोटे (असत्) शास्त्र हैं।

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि थोड़ी पूँजीवाला लकड़ी, कोयला इकट्ठा करता है और सब पूँजी इसमें लगाये, तब खाने-पीने के पदार्थों के लिये पैसा न रहे तो भूखा रहता है। उसीप्रकार जिसकी बुद्धि अल्प है, वह जीव अप्रयोजनभूत में बुद्धि लगाये और प्रयोजनभूत की याद न रखे तब उसका संसार नष्ट नहीं होता। इसलिये जीवों को प्रयोजनभूत बात तो याद

रखना ही चाहिये। इतिहास, गणित की बातें वगैरह अप्रयोजनभूत याद न रहें तब भी मोक्षमार्ग में आपत्ति नहीं आती। अधिक बुद्धि हो तो सभी प्रकार का ज्ञान करना चाहिये।

अब टीकाकार विशेष स्पष्ट करते हैं। ये गुणस्थान, मार्गणास्थान में केवलज्ञान और केवलदर्शन तथा क्षायिकसम्यक्त्व और सिद्धपद साक्षात् उपादेय हैं। यहाँ पर्यायअपेक्षा से बात करते हैं। पूर्णपर्याय को उपादेय माने, वह अखंडद्रव्य को उपादेय माने, बिना केवलज्ञान को उपादेय नहीं मान सकता है। तथा शुद्धात्मा की सम्यक्प्रतीति, स्वसंवेदन ज्ञान तथा आचरणरूप लक्षणवाला समयसार अर्थात् मोक्षमार्ग पूर्वोक्त केवलज्ञान आदि का एकदेश शुद्धनय से साधक है। शरीर, संहनन, पुण्य-पाप साधक नहीं हैं; लेकिन मोक्षमार्ग केवलज्ञान का कारण है, इसलिये साधक कहा है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व और सिद्धपद यों ही नहीं आ जाते, इसलिये साक्षात् उपादेय कहा; और मोक्षमार्ग को परंपरा उपादेय कहा, उसके बिना सब त्याज्य है। शरीर, मन, वाणी, राग-द्वेष, व्यवहाररत्नत्रय ये सब त्याज्य हैं। तथा अध्यात्म ग्रंथ में बीजभूतपद अर्थात् समयसार वगैरह ग्रंथों में जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप बताया है, वही उपादेय है। शुद्धस्वभाव अंगीकार करनेयोग्य है।

इसप्रकार जीवाधिकार के संबंध में शुद्ध तथा अशुद्ध जीव के कथन की मुख्यता जो सातवाँ स्थान है, उसमें तीन गाथायें समाप्त हुयीं। अब इसके बाद की गाथा में पूर्वार्द्ध में सिद्धों के स्वरूप का, उत्तरार्द्ध में उनके ऊर्ध्वगमन स्वभाव का कथन करते हैं।

कुछ जीव कहते हैं सिद्धदशा में जीव ज्ञान को भुला देता है (ज्ञान नहीं होता), कुछ कहते हैं कि मुक्ति के बाद जीव ज्यों का त्यों चला जाता है। कुछ कहते हैं कि सिद्ध फिर अवतार धारण करते हैं। यह सब विपरीतता मिटाने और अविपरीतपना बताने के लिये सिद्धपद की बात करते हैं।

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उत्पादवयेहिं संजुत्ता॥१४॥

जो जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं, सम्यक्त्वादि आठ गुणों के धारक हैं, तथा अंतिम शरीर से किंचित् न्यून हैं; वे सिद्ध हैं। तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, नित्य हैं, तथा उत्पाद और व्यय इन दोनों से सहित हैं।

कैसे हैं सिद्ध भगवान? ज्ञानावरणादि कर्मों से रहित हैं, उनको कर्म का निमित्तपना नहीं है—यह सिद्धदशा का कारण समझाया। अब कार्यरूप सिद्धदशा प्रकट हुई यह समझाते हैं। और फिर सम्यक्त्वादि आठ गुणों के धारक हैं, और ये अंतिम शरीर से कुछ न्यून हैं तथा ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में बिराजते हैं। द्रव्य-गुण त्रिकाल रहते हैं, और पूर्वपर्याय का अनुभव व्यय होता है और नवीन पर्याय के अनुभव का उत्पाद होता है। इसप्रकार सिद्ध भगवान उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित हैं। अनेक अज्ञानी कहते हैं कि सिद्ध में घोड़ागाड़ी (ताँगा-बग्घी), विमान (वायुयान), उद्यान (बाग) नहीं है, तब वहाँ क्या सुख होगा? और वहाँ क्या क्रिया करते होंगे?

भाई! यहाँ संसार में जीव पर की क्रिया नहीं करता है, राग-द्वेष और अज्ञान की अथवा अल्पज्ञता की क्रिया करता है, वह संसारी है और वीतरागी-विज्ञान का और पूर्ण आनंद का अनुभव करता है, वह सिद्ध है। मोक्षमार्ग का व्यय होकर पूर्ण सिद्धदशा प्रकट होती है और वहाँ शुद्ध चैतन्य का अनुभव करता है। जो चींटियों के झुण्ड की तरह (सामूहिकरूप से एक साथ चलना) चला जाता हो उसे कौन रोक सकता है? इसप्रकार अज्ञान से विपरीत हुये जीव संसार में चले जा रहे हैं (भ्रमण करते हैं) उन्हें कौन रोक सकता है? स्वयं को स्वयं का करना जैसा है।

तेरहवीं गाथा में संसारी जीव का स्वरूप कहा था। यहाँ गाथा १४ में सिद्धदशा का वर्णन करते हैं। सिद्ध कैसे होते हैं और किस कारण से होते हैं? संसार अनादि से है और सिद्धदशा नवीन प्रकट होती है। उसका स्वरूप कैसा है? वह बतलाते हैं।

सिद्ध कैसे होते हैं? आठ कर्मों से रहित हैं और आठ गुणों से सहित हैं। संसारी जीव कर्मों से सहित है अर्थात् कर्म निमित्त है, और आठ कर्मों का नाश होने से आठ प्रकार की शुद्धदशा प्रकट होती है और ज्ञानघन (ज्ञान का पिंड) सिद्ध की अवगाहना के अंतिम शरीर से किंचित् न्यून होता है।

अनेक जीव कर्म को नहीं मानते हैं और अनेक जीव सिद्ध में कर्मरहितपना नहीं मानते हैं। इस बात का इससे निषेध हुआ।

और फिर कोई सिद्ध की अवगाहना में भूल करते हैं। शरीर के दो तृतीयांश भाग (१/३)

जितना कद सिद्ध में रहता है ऐसा कहते हैं। जैसे कि अंतिम शरीर का प्रमाण ५०० धनुष हो, तो उसका २/३ भाग प्रमाण रहता है। लेकिन यह बात असत्य है। पेट का पोलापन वगैरह पोलापन प्रमाण कद में (ऊँचाई में) कम होता है, यह बात सत्य है; किंतु ऊँचाई में १/३ भाग कम होता है, यह बात असत्य है। सिद्ध की अवगाहना अंतिम शरीर से किंचित् न्यून होती है।

सिद्धजीव लोक के अग्रभाग में रहते हैं। कोई कहते हैं कि पक्षी के पंख टूट जाने से पक्षी वहीं का वहीं पड़ा रहता है; इसीप्रकार आत्मा मुक्त होने से वहीं का वहीं पड़ा रहता है यह बात भी असत्य है।

कोई कहते हैं पंच महाभूत में समा जाता है अथवा अनंत में मिल जाता है—यह बात असत्य है। पंच महाभूत पुद्गल से भिन्न वस्तु नहीं है—पृथ्वी, जल वगैरह पुद्गल की अवस्था है तथा आकाश अरूपी है, आत्मा उसको स्पर्श नहीं करता है। सिद्धजीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अग्रभाग में रहते हैं। भक्त के संकट आये, इसलिये सिद्ध फिर अवतार लेते हैं ऐसा नहीं होता है। जैसे चने का बीज नष्ट होने से वृक्ष नहीं उगेगा, उसीप्रकार राग का बीज नष्ट होने से सिद्ध का अवतार (पुनर्जन्म) नहीं होता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि सिद्ध रागादिरूप नहीं परिणमते हैं और संसार की इच्छा नहीं करते हैं, यह सम्यग्दर्शन की शक्ति है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग का व्यय होकर सिद्ध अवस्था प्रगट होती है; तब फिर जिसका व्यय हुआ, वह सम्यग्दर्शन सिद्ध में कैसे रहे ?

समाधान—वृक्ष की मूल डाल (शाखा) में छोटी-छोटी डालियाँ बहुत होती हैं, और बहुत शाखायें होने पर भी मूल का नाश नहीं होता, बहुत शाखाओं सहित डाल रहती है। उसीप्रकार भगवान आत्मा शुद्धचैतन्यमूर्ति, अखंड ज्ञायकमूर्ति है; उसका ज्ञान करने से सम्यग्दर्शनरूपी शाखा प्रगट होकर फिर केवलज्ञान, केवलदर्शन और वीतरागतारूपी शाखायें प्रगट होती हैं। इससे सम्यग्दर्शन सिद्ध में नष्ट नहीं होता।

और फिर भगवान के अनंत गुण शाश्वत् रहने की अपेक्षा नित्य हैं और प्रत्येक समय में नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व पर्याय का नाश होता है; इस अपेक्षा से उत्पाद-व्यय सहित हैं। अब उसको विस्तार से कहते हैं।

स्वयं का शुद्ध आत्मा आठ कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने में समर्थ है। शास्त्र में कथन आता है कि स्वद्रव्य यह इष्ट और परद्रव्य यह अनिष्ट ऐसा मानना यह भ्रम है। परद्रव्य में इष्ट-अनिष्टपना नहीं है। स्वयं में इष्ट-अनिष्ट के दो भाग होते हैं। त्रिकालीस्वभाव इष्ट है और रागादि परिणाम अनिष्ट हैं—इसप्रकार समझकर राग-द्वेषादि में कर्म निमित्त हैं; इसलिये कर्म में अनिष्ट का अथवा शत्रु का आरोप किया है। आठ कर्मों का नाश स्वयं की आत्मा के ज्ञान के बल से होता है ऐसा कहा है। इसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश हो जाता है।

किसी क्रिया अथवा उपवास के बल से आठ कर्मों का नाश होता है ऐसा नहीं कहा है, आत्मज्ञान बल से कहा है। इसमें मोक्षमार्ग और शुक्लध्यान भी आ गया। आत्मा की प्रतीति, स्वसंवेदन-ज्ञान और लीनता तीनों मिलकर एक ही मार्ग है। और शुद्ध आत्मबल प्रगट हुआ उसको सत्यार्थ देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची श्रद्धा होती ही है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में सम्यग्दर्शन होने के पहिले का अनुक्रम बताते हैं:—(१) सच्चे देव, निर्ग्रंथ गुरु और सच्चे शास्त्र की श्रद्धा नि:शंकरूप से होना चाहिये और कुदेवादि की श्रद्धा छोड़ना चाहिये। नवतत्त्वों के कहनेवाले कौन हैं ? यह जाने बिना तत्त्व-विचार नहीं हो सकता है। (२) नवतत्त्व जैसे हैं, वैसे जानना चाहिये। यह जाने बिना स्व-पर भेद-विज्ञान नहीं होता है। (३) स्व-पर का भेद-विज्ञान करना चाहिये, स्व-पर के भेद-विज्ञान बिना आत्मा का विचार हो ही नहीं सकता। (४) आत्मा का विचार—इसके बल से सम्यग्दर्शन होता है; ऐसे क्रम बिना, सच्चे देव-गुरु की श्रद्धा बिना, मात्र आत्मा की बातें करना, यह तो चतुराई की बात है।

यहाँ शुद्ध आत्मज्ञान के बल से आठों कर्मों का नाश होता है, इसमें अघातिकर्म भी आ गये। जिस शुद्ध आत्मा के बल से वीतरागता प्रगट होती है, तब अघातिकर्म नष्ट हुये बिना नहीं रहते। इसलिये सब कर्म शुद्ध आत्मा के बल से नष्ट होते हैं—ऐसा कहा है। कोई जीव आठ वर्ष की आयु में केवलज्ञान प्राप्त करके तुरंत सिद्ध होता है, और कोई केवलज्ञान के बाद देशन्यून (८ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम) एक कोटिपूर्व वर्ष तक शरीर में रहता है। वह स्वयं की योग्यता के कारण से रहता है। यहाँ तो सबके लिये एक ही सिद्धांत है कि शुद्ध आत्मा के बल से कर्म नष्ट होते हैं। कर्म जड़ हैं, उनका आत्मा व्यय करता है, यह निमित्त से कथन है। इसप्रकार

ज्ञानावरणादि समस्त मूलप्रकृति और उत्तरकर्मप्रकृति का नाश होने से सिद्ध आठ कर्मों से रहित होते हैं, यह नास्ति से कहा है।

अब अस्ति से बात करते हैं। सिद्ध के लिये आठ गुण प्रगट होते हैं। मोहनीय कर्म के अभाव से सम्यक्त्व, ज्ञानावरणी के अभाव से केवलज्ञान, दर्शनावरणी के अभाव से केवलदर्शन, अन्तराय के अभाव से वीर्य, नाम के अभाव से सूक्ष्मत्व, आयु के अभाव से अवगाहनत्व, गोत्र के अभाव से अगुरुलघुत्व, वेदनीय के अभाव से अव्याबाधत्व—इसप्रकार आठ गुण प्रगट होते हैं। ये आठों पर्याय हैं, तब भी पर्याय को गुण कहे जाते हैं। अब उन गुणों का विस्तार करते हैं।

(१) सम्यक्त्व—सिद्ध भगवान पहले संसारदशा में थे और तब कर्म का निमित्त था। सम्यग्दर्शन प्रगटकर सिद्धदशा प्रगट की, वह सम्यग्दर्शन पहले कहाँ से हुआ? और अब क्यों रहता है? उसकी बात करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है, उसका व्यय होकर सिद्धदशा होती है। फिर सम्यग्दर्शन सिद्धदशा में कैसे रहता होगा ऐसा कोई प्रश्न करे।

उसका समाधान—वृक्ष की बड़ी शाखा में से अनेक शाखायें होने पर भी बड़ी शाखा नष्ट नहीं हो जाती। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन के निमित्त से वीतरागता और केवलज्ञानादि प्रगट होने पर भी सम्यग्दर्शन नष्ट नहीं होता है।

अब कैसे प्रगट होता है? शुद्ध आत्मा की रुचि से प्रगट होता है। आत्मा कैसा है? केवलज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रभुत्व, स्वच्छत्व, कर्त्ता, करण वगैरह अनंत गुणों का धाम आत्मा है। उसको आदरणीय मानकर उसकी अंतर (चैतन्य) में रुचि करना, इसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। ऐसा कहनेवाले सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, यह व्यवहारसम्यग्दर्शन है। राग है, फिर रागरहित आत्मा की श्रद्धा करना, यह अरागीतत्त्व की प्रतीति है। कुटुंब परिवार वगैरह पर हैं, अल्पज्ञदशा विकारदशा पर्याय में है, उसको हेय मानकर आत्मा की अंतररुचि करना, यह निर्विकारी सम्यग्दर्शनदशा है। यह नवीन पर्याय प्रगट होती है, वह गुण नहीं है, लेकिन यहाँ पर्याय को उपचार से गुण कहा है।

आत्मा में श्रद्धागुण अनादि से है और उसकी मिथ्या अवस्था अनादि से है। किंतु सच्चा मानकर सम्यक्श्रद्धा नवीन उत्पन्न करता है। तपश्चरणरूप अवस्था, मुनि-अवस्था है। बाह्य

उपवास तप नहीं है। मेरे स्वभाव में इच्छा नहीं है, ऐसी दृष्टि और रुचि बगैर, चारित्र और तप नहीं होता। पुण्य से स्वर्ग मिलता है लेकिन धर्म नहीं होता है। शुद्ध आत्मा के आश्रय से धर्म होता है, ऐसे भानपूर्वक गृहस्थाश्रम छोड़कर बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथदशा प्रगट करता है, वह मुनिदशा है।

ऐसे मुनिपने में जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न किया था, उसके परिणामस्वरूप समस्त जीवादि तत्त्वों के विषयों में विपरीताभिनिवेशरहित परिणामरूप परम क्षायिकसम्यक्त्व नाम का प्रथमगुण सिद्ध में होता है। विपरीताभिनिवेशरहित अर्थात् नवतत्त्व जैसे हैं, वैसा श्रद्धान करता है, राग को राग मानता है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को बाधा नहीं पहुँचाता, इसप्रकार प्रत्येक तत्त्व एक-दूसरे के अभाव में रहते हैं। आत्मा पर-वस्तु को छूता (स्पर्श करता) है, ऐसा कहना यह समीपता बतानेवाला कथन है। नवतत्त्व जैसे स्वतंत्र हैं वैसा श्रद्धान करना इसका नाम विपरीताभिनिवेशरहितपना है। सम्यग्दर्शन होने से जो विपरीताभिनिवेशरहितपना भाव है, वह सिद्ध में विपरीताभिनिवेशपने क्षायिकसम्यक्त्व रहता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(२) केवलज्ञान—केवलज्ञान किस प्रकार प्रगट किया यह बतलाते हैं। पहिले छद्मस्थ अवस्था में विकाररहित स्वानुभवरूप ज्ञान के परिणामस्वरूप (फलरूप से) केवलज्ञान प्रगट हुआ है। छद्मस्थ (छद्म में रुका या अटका हुआ) ज्ञानावरणी-दर्शनावरणी कर्मों को छद्म कहते हैं। उनके झुकावरूप दशा थी इससे उसमें रुका हुआ रहता है इसलिये उसे छद्मस्थ कहते हैं। वे कर्म जड़ हैं, ज्ञान-दर्शन को रोकते नहीं हैं। एक तत्त्व दूसरे को हानि पहुँचाये ऐसा नहीं होता है। तथा एक तत्त्व दूसरे तत्त्व से हानि उठाता है ऐसा भी नहीं होता। किंतु जीव में स्वयं के कारण से ज्ञान-दर्शन अल्प होते हैं, तब उसका उदय निमित्त कहा जाता है।

यहाँ जीवों का ज्ञानस्वभाव कहा है कि विकाररहित ज्ञानस्वभाव है। ऐसे ज्ञानस्वभाव का अनुसरण कर सम्यग्ज्ञान प्रगट किया है। पर का अनुसरण कर, शास्त्र का अथवा राग का अनुसरण कर ज्ञान प्रगट होता है—यह बात निकाल देना चाहिये। पहिले शास्त्रज्ञान का विकल्प होता है लेकिन उसके आश्रय से स्वानुभव नहीं होता। स्वयं के शुद्धात्मा के आश्रय से स्वानुभव होता है और स्वसंवेदनज्ञान प्रगटता है और नवीन-नवीन ज्ञानदशा प्रगट होती है।

और फिर ज्यादा शास्त्र पढ़े हों—अर्थात् नवपूर्ववाले को जल्दी आत्मज्ञान होता है और कम पढ़नेवाले को देर से होता है—ऐसा है ही नहीं। स्वयं के आत्मा के अनुभव से होता है। पहिले जीव को यथार्थ श्रवण कर ग्राह्य करना चाहिये, और ग्रहण कर बारंबार चिंतवन करना चाहिये। आत्मा के स्वानुभव का फल केवलज्ञान है, तप अथवा कष्ट करने से केवलज्ञान नहीं होता। वस्तु स्वभाववान है, गुण-पर्याय का पिण्ड है; उसके अनुभवरूप ज्ञान को साधन कहा है। उसके फलस्वरूप केवलज्ञान प्रगटता है, और एक समय में लोक तथा अलोक के संपूर्ण पदार्थों को भिन्न-भिन्न जानता है, विशेषों को जानता है। अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद-सहित जानता है, उसको केवलज्ञान गुण कहते हैं। ऐसे स्व-संवेदन ज्ञानरूप साधन से केवलज्ञान और सिद्धदशा प्रगटती है, दूसरे से नहीं।

(३) केवलदर्शन—केवलदर्शन कैसे प्राप्त होता है उसकी बात करते हैं। संपूर्ण विकल्पों से शून्य निज शुद्ध आत्मा की सत्ता अवलोकनरूप जो दर्शन पहले भावित (भावनारूप) था, उसके परिणामस्वरूप केवलदर्शन होता है। सिद्धात्मा पहिले संसारी था। संसारदशा में रागरहित भेदरहित एकरूप पदार्थ जो स्वयं का आत्मा है, उसके अवलोकन की भावना करने से केवलदर्शन होता है।

पहिले कहा कि जैसे शुद्ध आत्मा की प्रतीति की थी उसके फलस्वरूप क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न हुआ, और ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता की थी उसके फलस्वरूप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उसीप्रकार साधकदशा में शुद्ध आत्मा के सत्तावलोकन का प्रयत्न किया था, उसके फलस्वरूप केवलदर्शन उत्पन्न होता है। इसप्रकार आत्मा त्रिकाली शुद्धवस्तु है, दर्शन उसका त्रिकाली गुण है, और आत्मा का सामान्य सत्ता की ओर का झुकाव यह उसकी पर्याय है। उसमें यह दर्शनगुण है और यह ज्ञानगुण है ऐसा भेद नहीं है। उसीप्रकार यह आत्मा है और यह ज्ञान है ऐसा भेद नहीं है। इसीप्रकार दर्शनगुण है। इसप्रकार समझकर आत्मा में सत्तावलोकन का प्रयत्न पहले किया था, उसके फलस्वरूप केवलदर्शन उपजता है; जो लोकालोक के संपूर्ण पदार्थों में भेद बिना अनेकता बिना अभेद दृष्टि से देखता है।

(४) अनंतवीर्य—सिद्ध में अनंतवीर्य होता है, वह कहाँ से प्रगट हुआ? पहले मुनि अवस्था में आत्मा के भानपूर्वक घोर परीषह आने पर भी तथा सिंह, व्याघ्र, बिच्छु, देवकृत

उपसर्ग क्षुधा, तृषा तथा स्त्री, पशु, अचेतनकृत उपसर्ग आने पर भी अनंत गुणों को रचनेवाले वीर्य (शक्ति) से स्वयं के निरंजन परमात्मा के ध्यान में अचलित (अविचल) रहकर धीरज का अवलंबन लिया था; उस धैर्य के फलस्वरूप अनंतवीर्य प्रगट होता है।

पांडवों को घोर उपसर्ग हुआ, लोहे के कड़े आग से संतप्त पहिनाये, गजसुकुमार को अग्नि का (उपसर्ग) परीषह हुआ, तब भी बहुत उपसर्ग करनेवाले के प्रति क्रोध भी नहीं आया, उपसर्ग करनेवाले के प्रति द्वेष भी नहीं हुआ। उन्होंने निमित्त तथा पुण्य-पाप के आश्रय से रहित ऐसे त्रिकाली स्वभाव की एकाग्रता करके धैर्य का सहारा लिया था। शास्त्र कहते हैं इसलिये सहारा नहीं लिया था। पूर्व में कर्म बाँधे थे इसलिये उदय आया ऐसा विकल्प भी नहीं। धैर्य न रखें तब नवीन कर्म बंधेंगे ऐसा विकल्प नहीं है। किंतु शुद्ध चैतन्य मूर्ति का अवलोकन बरतता है, उस वीर्य की एकाग्रता पूर्ण वीर्य प्रगट होने का कारण है।

जैसे दर्शन की एकाग्रता पूर्ण दर्शन का कारण है, ज्ञान की एकाग्रता पूर्ण ज्ञान का कारण है। उसीप्रकार परीषहों में वीर्य की एकाग्रता अनंतवीर्य होने का कारण है। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसे ध्यान में अवलंबन लिया था, उसके फलस्वरूप अनंतवीर्य प्रगट हुआ था। लोकालोक को केवलज्ञान जानता है, तब भी खेद नहीं होता। यहाँ तो कोई जीव थोड़ा पढ़े तो सिर दुखने लगता है। और सिद्ध लोकालोक को जानते हैं; अनंत पदार्थ, उनके द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानते हैं; अनंत निगोद को, अनंत सिद्धों को, अनंत पुद्गल पदार्थों को जानते हैं; फिर भी वहाँ खेद का अभाव है, ऐसे वीर्यगुण को प्रगट किया है। केवलज्ञान की रचना को रचे ऐसी अनंत सामर्थ्य सिद्धदशा में प्रगटती है। इसप्रकार ज्ञानावरणी के अभाव से केवलज्ञान, दर्शनावरणी के अभाव से केवलदर्शन, मोहनीय के अभाव से सम्यक्त्व और अंतराय के अभाव से अनंतवीर्य, चार गुणों की बात की।

अब अघातिकर्म के अभाव से प्रगट होनेवाले चार गुणों की बात करते हैं।

(५) सूक्ष्मत्व—सिद्ध का अतीन्द्रिय स्वरूप केवलज्ञान गोचर है, इसलिये सिद्ध सूक्ष्म हैं। ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष अनंत गुणों की दशासहित केवलज्ञान द्वारा जाना जा सकता है। राग द्वारा, निमित्त द्वारा नहीं जाना जा सकता, चार ज्ञान द्वारा भी परिपूर्ण नहीं जाना जा सकता; किंतु केवलज्ञान द्वारा जाना जा सकता है। निचली दशा में ऐसी प्रतीति नहीं हो सकती। राग और पुण्य से आत्मा को जाना जाये ऐसा नहीं है। किंतु स्वसंवेदन अतीन्द्रिय ज्ञान से जाना जाता है ऐसा है।

(६) अवगाहनत्व—जैसे एक दीपक में दूसरे दीपक का प्रकाश समा जाता है, उसीप्रकार एक सिद्धक्षेत्र में अनंत सिद्ध संकर और व्यतिकर दोष के बिना रह सकें ऐसा अवकाश देने का सामर्थ्य प्रगट हुआ, वह अवगाहना गुण है।

निचली दशा में एक जीव है, वहाँ उस स्थान में कर्म तथा दूसरे जीवों को अवगाहन देने की शक्ति है फिर भी इससे कर्म वगैरह स्वयं को बाधा पहुँचायें ऐसा है ही नहीं; उसीप्रकार स्वयं दूसरे के साथ मिश्रित नहीं होता। इसीप्रकार स्वयं स्वभाव के ध्यान की एकाग्रता करे तब दूसरों को अवगाहन नहीं देता, ऐसा भी नहीं है। और फिर राग-द्वेष, मन-वाणी होने पर भी उनके साथ एक नहीं हुआ है, स्वयं का स्वरूप भूला नहीं है। ऐसे स्वयं के अवगाहन गुणवाली आत्मा में श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक लीनता की और सिद्धदशा प्रगट की वहाँ अवगाहन गुण प्रगट हुआ। उसके कारण से अनंत सिद्ध एकक्षेत्र में रहने पर भी वे सिद्ध मिल नहीं जाते, यह संकरदोष रहितपना है। और प्रत्येक सिद्ध साथ रहने पर भी स्वयं के स्वरूप से च्युत होकर दूसरे सिद्धरूप नहीं हो जाते, यह व्यतिरेकदोष रहितपना है। ऐसा अवगाहन गुण सिद्ध में प्रगट हुआ है।

(७) अगुरुलघुत्व—यदि सिद्ध का स्वरूप सर्वथा भारी हो तो लोहे के पिंड की तरह सदा नीचे पड़ा रहे और जो सर्वथा हल्का हो तो अकौआ के फूल की तरह (रुई के रेशे की तरह) उड़ता रहे अर्थात् निरंतर घूमता रहे, लेकिन इस प्रकार नहीं है। सिद्ध लोकाग्र में जहाँ है, वहाँ स्थिर हैं। नीचे की दशा में भी जीवों का स्वभाव तो ऐसा ही है किंतु पर्याय में विपरीतता है, लेकिन स्वभाव में परिवर्तन (फेर) नहीं है। सिद्ध को पर्याय में अगुरुलघुत्व गुण प्रगट हो गया है। [क्रमशः]

फार्म भरने की तिथि बढ़ी

जनवरी / फरवरी १९७९ में ली जानेवाली शीतकालीन परीक्षाओं के लिये फार्म भरने की अंतिम तिथि २० नवंबर तक बढ़ा दी गयी है। अब फार्म बिना लेट फीस के २०-११-७८ तक, तथा प्रत्येक छात्र पर दस पैसा लेट फीस के साथ ३०-११-७८ तक स्वीकार किये जा सकेंगे। परीक्षाएँ ५, ६ व ७ फरवरी, १९७९ को होंगी। विस्तृत कार्यकम रोल नंबरों के साथ भेजा जावेगा। **— मंत्री, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, बापूनगर, जयपुर**

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – जो शास्त्रों का जानकार है, वह तो मुक्ति पायेगा ही ?

उत्तर – जो जीव आत्मज्ञान से शून्य हैं, वीतरागी-ज्ञानरहित है; उस जीव को बाह्य पदार्थों से कुछ भी सिद्धि नहीं होती, उसका शास्त्रज्ञान भी किसी काम का नहीं। स्वसंवेदन ज्ञान से रहित व्रत-तप आदि जीव को शीघ्र दुःख का कारण होते हैं। आनंदसहित ज्ञान ही निज आत्मज्ञान है और वही ज्ञान वर्तमान सुख का कारण है तथा मोक्षसिद्धि का कारण है। शास्त्र ज्ञान, व्रत-तप आदि के जो शुभ विकल्प हैं, वे सभी उसी क्षण-तत्काल दुखरूप हैं और भावी दुःख का कारण हैं। तथा स्वसंवेदन ज्ञान तो वर्तमान सुखरूप है और भावी सुख का भी कारण है; इसलिये स्वसंवेदन ज्ञान की ही समस्त महिमा है।

प्रश्न – शास्त्र द्वारा आत्मा का ज्ञान होता है या नहीं ?

उत्तर – शास्त्र द्वारा आत्मा का ज्ञान नहीं होता, दिव्यध्वनि से भी आत्मा जानने में नहीं आता—ऐसा परमात्मप्रकाश में कहा है न! आत्मा तो अपने से ही अपने द्वारा जानने में आता है, तब शास्त्र को निमित्त कहा जाता है। प्रवचनसार में आता है कि आत्मा के लक्ष्य से शास्त्राभ्यास करो-वहाँ तो निमित्त बतलाया है। शास्त्र-पठन का गुण तो वस्तुभूत आत्मा का ज्ञान करना है। ज्ञानमय आत्मा का अनुभव करना ही शास्त्र-पठन का गुण है, उसे तो जानता नहीं और मात्र शास्त्र पढ़ता है। परंतु निज परमात्मा को जाने बिना कर्म बंधन से छुटकारा मिलनेवाला नहीं। दया, दान, पूजा, व्रत, तप आदि शुभराग तो दूर रहो; किंतु यहाँ तो कहते हैं कि अकेले शास्त्र-पठन में ही रुक गया—सब कंठस्थ कर डाला, तो इससे भी क्या हुआ ?

प्रश्न – शास्त्र पढ़ने से आत्मा की सन्मुखता तो कही जाती है न ?

उत्तर – आत्मा में जाने का प्रयत्न करना हो तो आत्मा की सन्मुखता कही जाये। यदि मात्र शास्त्र के ज्ञान में ही रुका रहे और अंतर निर्विकल्प में जाने का प्रयत्न न करे तब तो वह आत्म-सन्मुख भी नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न – एक तरफ तो कहते हो कि शास्त्र पढ़ना चाहिये और दूसरी तरफ कहते हो कि शास्त्र पढ़ने में रुक जाये तो भी आत्मा जानने में नहीं आता—ऐसा क्यों?

उत्तर – जो जीव व्यापार आदि के अशुभ भाव में ही रुक गये हैं और आत्मज्ञान होने में निमित्त ऐसे शास्त्राभ्यास का भी जिनको समय नहीं; उनसे कहते हैं कि हे भाई! तू शास्त्र अभ्यास कर। किंतु जो जीव शास्त्राभ्यास करता हुआ भी मात्र उसी में रुक जाये और आत्म-सन्मुख होने का प्रयत्न न करे तो उससे कहते हैं कि हे भाई! शास्त्र पठन का गुण तो अंतर्मुख होकर अनुभव करना है, उस निर्विकल्प अनुभव का प्रयत्न करते नहीं तो तुम्हारा वह शास्त्र पठन किस काम का—क्योंकि शास्त्र पढ़ने का हेतु—प्रयोजन तो आत्मज्ञान प्रगट करना ही है। शास्त्र वाँचन और शास्त्र श्रवण में द्रव्य-सन्मुख होने की जोरदार बात पढ़ते और सुनते ही उसकी धुन चढ़ जाना चाहिये; वह न हो तो सब श्रम व्यर्थ है।

प्रश्न – शास्त्र द्वारा आत्मा को जाना और बाद में परिणाम आत्मा में मग्न हुए। इन दोनों में आत्मा के जानने में क्या अंतर है?

उत्तर – अनंतगुणा अंतर है। शास्त्र से जानपना किया, यह तो साधारण धारणारूप जानपना है और आत्मा में मग्न होकर अनुभव में तो आत्मा को प्रत्यक्ष वेदन से जानता है। अतः इन दोनों में भारी अंतर है।

प्रश्न – क्या सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव के सद्भाव में आयुष्य बँधती है?

उत्तर – सम्यग्दृष्टि को चौथे-पाँचवें गुणस्थान में व्यापार-विषयादि का अशुभराग भी होता है; तथापि सम्यग्दर्शन का ऐसा माहात्म्य है कि उसको अशुभभाव के समय आयुष्य बँधती नहीं, शुभभाव में ही बँधती है।

सम्यग्दर्शन का ऐसा प्रभाव है कि उसके भव बढ़ते तो हैं ही नहीं; जो भव होते भी हैं, उनमें नीचा भव नहीं होता, स्वर्गादि का ऊँचा भव ही होता है।

समाचार दर्शन

श्री आदिनाथ दिगंबर जिनमंदिर का शिलान्यास : पूज्य गुरुदेवश्री का पदार्पण

बड़ौदा (गुज०) : श्री आदिनाथ दिगंबर जिनमंदिर तथा महावीर-कुंदकुंद स्वाध्याय भवन का शिलान्यास पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य में श्री रमणीकलाल अमृतलाल शाह, तथा श्री जवेरी शांतिलाल चिमनलाल शाह बंबईवालों के शुभ हस्तों से दिनांक ९-१२-७८ को ११ बजे संपन्न होने जा रहा है।

गुरुदेवश्री इसके पूर्व ५-१२-७८ को यहाँ पधार जावेंगे तथा ५ दिन वहीं विराजेंगे। उनके प्रवचन वही एक विशाल पंडाल में प्रतिदिन प्रातः व दोपहर दोनों समय होंगे। रात्रि में तत्त्वचर्चा का कार्यक्रम भी रहेगा।

इस शुभ अवसर पर प्रशममूर्ति पूज्य बेनश्री बेन चंपाबेन, शांताबेन और आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री लालचंदभाई अमरचंद मोदी, श्री त्तीमचंद जेठालाल सेठ तथा सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल भी पधार रहे हैं।

आत्मार्थी बंधुओं से लाभ लेने को पधारने के लिए सादर आमंत्रण एवं साग्रह अनुरोध है।

— चन्दूलाल कोटड़िया

विद्वानों के प्रवचनों का अपूर्व लाभ व तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को महत्त्वपूर्ण योगदान

दिल्ली : श्री दिगंबर जैन महासमिति की मीटिंग में भाग लेने हेतु श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा श्री नेमीचंदजी पाटनी दिनांक १४-१०-७८ को यहाँ पधारे। उस समय तीन दिन तक अनायास ही उनके प्रवचनों का लाभ स्थानीय मुमुक्षु मंडल के सदस्यों को मिला। उनके प्रवचन स्थानीय दिगंबर जैन मंदिर माडलबस्ती में दोनों समय होते थे। इसी अवसर पर श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को श्री माणिकचंदजी लुहाड़िया की ओर से १५,००१) रुपये, श्री कल्याणकुमारजी जैन की ओर से १०,००१) रुपये तथा श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन की ओर से ५,००१) रुपये—इसप्रकार कुल तीस हजार तीन रुपये के वचन प्राप्त हुए हैं। स्मरण रहे कि देहली से लगभग डेढ़ लाख रुपये पहले ही हो चुका है।

—जतीशचंद जैन

अ० भा० दि० जैन परिषद् का अधिवेशन
शीतल जन्म-शताब्दी समारोह एवं शिक्षण-शिविर का आयोजन

भिण्ड (म.प्र.)-यहाँ अखिल भारतीय दि० जैन परिषद का वार्षिक अधिवेशन आगामी १९ व २० नवम्बर, १९७८ को होने जा रहा है। अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों से हजारों की संख्या में विचारकों, विद्वानों, समाजसेवियों, युवकों, पत्रकारों एवं अन्य धर्मबन्धुओं के पधारने की आशा है।

कार्यक्रम श्रीमान् सेठ डालचन्दजी जैन सागरवालों की अध्यक्षता में होगा। विभिन्न सम्मेलनों के मुख्य अतिथियों के रूप में महामहिम श्री सी० एम० पुणाचा, राज्यपाल (म०प्र०); श्री वीरेन्द्रकुमारजी सकलेचा, मुख्यमंत्री (म०प्र०); श्री त्रिलोकचदंजी जैन, स्वास्थ्य मंत्री (राज०); श्री लालचंद हीराचंद दोसी, बम्बई; श्रीमती विजयाराजे सिंधिया, ग्वालियर आदि पधार रहे हैं।

अधिवेशन के साथ-साथ इस अवसर पर महिला सम्मेलन, युवक सम्मेलन, जैनपत्रों के संपादकों का सम्मेलन, भगवान महावीर व उनकी परंपरा-वृत्तचित्र का प्रदर्शन, जैनपत्रों की प्रदर्शनी आदि के कार्यक्रम भी आयोजित किये गये हैं। इस अवसर पर ही ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का जन्म-शताब्दी समारोह भी मनाया जायेगा।

उक्त अवसर पर श्री बाबूभाई मेहता फतेपुर, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल विदिशा आदि भी पधारेंगे।

इसके तत्काल बाद ही दिनांक २१-११-७८ से दिनांक २७-११-७८ तक एक शिक्षण-शिविर का भी आयोजन किया गया है। उसमें भी उक्त विद्वानों का लाभ प्राप्त होगा। आत्मार्थी बंधुओं से पधारने का अनुरोध है। **— शाह फूलचंद सर्राफ**

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन द्वारा
आयोजित अनोखा शिक्षण-शिविर सानन्द संपन्न

जयपुर : दिनांक ३-१०-७८ से १२-१०-७८ तक यहाँ अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा डॉ०

हुकमचंदजी भारिल्ल के निर्देशन में व उनके महत्त्वपूर्ण सहयोग से आयोजित यह शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न हुआ।

शिविर में लगभग ७३५ बालकों, प्रौढ़ों व महिलाओं ने सम्मिलित होकर तत्त्वलाभ लिया। शहर में श्री दिगंबर जैन बड़ा मंदिर घीवालों का रास्ता, दिगंबर जैन मंदिर दीवान भदीचंदजी, दिगंबर जैन मंदिर सिवाड़, मुलतान दिगंबर जैन मंदिर आदर्शनगर, सीमंधर चैत्यालय टोडरमल स्मारक भवन, पार्श्वनाथ दिगंबर जैन चैत्यालय बापूनगर, दिगंबर जैन चैत्यालय लालकोठी, प्रेम-शांति पब्लिक स्कूल, पद्मावती जैन बालिका विद्यालय, दिगंबर जैन आचार्य संस्कृत कॉलेज एवं महावीर दिगंबर जैन स्कूल नगर-विभाग में कक्षाओं का आयोजन किया गया। अनेक स्थानों पर आध्यात्मिक प्रवचन भी चलते थे।

श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के मेधावी छात्र सर्वश्री जतीशचंदजी, अभयकुमारजी, ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी, कैलाशचंदजी, संतोषकुमारजी, श्रीयांसकुमारजी, राजकुमारजी, राकेशकुमारजी, सुदीपकुमारजी, विनोदकुमारजी, महावीर पाटिल तथा कमलेशकुमारजी ने कक्षाऐं लेकर अपूर्व सहयोग किया। समापन समारोह की अध्यक्षता सेठ श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी ने की। मुख्यवक्ता के रूप में डॉ० भारिल्लजी ने शिक्षण-शिविर के महत्त्व पर अपने उद्‌गार व्यक्त किये। अंत में सभी उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पारितोषिक एवं प्रमाण-पत्र प्रदान किये गये। **—अखिल बंसल, महामंत्री**

पंडित रतनचंदजी भारिल्ल व श्री युगलजी जयपुर में

जयपुर : श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों के विशेष आग्रह पर १६ अक्टूबर को विदिशा से पंडित रतनचंदजी भारिल्ल पधारे। १६ दिन तक उन्होंने वैराग्यपूर्ण एवं तात्त्विक प्रवचनों तथा क्लासों के माध्यम से विद्यार्थियों तथा समाज को लाभान्वित किया। सुबह आदर्शनगर में, रात्रि को स्मारक भवन में आपके प्रवचन होते थे तथा गोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धि, परीक्षामुख आदि ग्रंथों पर कक्षायें चलती थीं।

अंत में दीपावली के दिन उनका विदाई समारोह मनाया गया। अनेक श्रोताओं ने उनके प्रति उपकार व्यक्त किया तथा निकट भविष्य में पुनः पधारने के लिये प्रार्थना की।

अत्यंत हर्ष का विषय है कि इसी शृंखला में दिनांक ८ नवंबर से २० नवंबर तक

सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता माननीय श्री युगलकिशोरजी 'युगल' पधार रहे हैं।

— ब्रह्मचारी अभिनंदन जैन

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा विशेष धर्म प्रभावना

दिनांक ५-१०-७८ से २४-१०-७८ तक समाज के विशेष आग्रह पर पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले ग्वालियर, गोहद, गोरमी, मौ, भिंड, जसवंतनगर, इटावा, करहल, मैनपुरी, कुरावली तथा भोगाँव पधारे। सभी स्थानों की समाज ने बड़े ही उत्साहपूर्वक आपके आध्यात्मिक प्रवचनों का रसास्वादन किया। आपके प्रवचन समयसार, छहढाला तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर चलते थे।

इस अवसर पर श्री कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को दूसरी किश्त के रूप में तथा कुछ नये कुल मिलाकर ७१,४८८) रुपये नगद प्राप्त हुए तथा ३१,३०३) रुपये के नये वचन प्राप्त हुए।

स्थान-स्थान पर समाज ने श्री कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट द्वारा हो रहे उत्तम कार्यों की मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की।

जिन महानुभावों की ओर से दूसरी किश्त की राशि शेष रह गई हो, वे कृपया अपनी राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा भेजने का कष्ट करें। ड्राफ्ट श्री कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई के नाम से भेजें।

—माणिकलाल आर० गाँधी, मंत्री

शिक्षण-शिविर संपन्न

गुढा (ललितपुर, उ.प्र.) : श्री दिगंबर जैन समाज द्वारा कार्तिक बदी १ से १० तक दस-दिवसीय शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें स्थानीय समाज के प्रौढ़, युवा एवं बालक, पुरुष-महिलाओं ने भरपूर लाभ लिया। अंत में सभी शिक्षार्थियों की परीक्षा ली गई। इस अवसर पर आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा, ब्रह्मचारी पंडित आत्मानंदजी, पंडित पन्नालालजी साढूमल के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। इसी बीच पंडित पन्नालालजी साढूमल के आचार्यत्व में सिद्धचक्र मंडल विधान भी बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ।

श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला के बालकों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की समाज ने काफी सराहना की। पाठशाला को ३०००) रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ।

- धर्मदास बजाज, अध्यक्ष

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक पंडित राकेशकुमारजी शास्त्री ने बडवाह (म.प्र.) में पर्यूषण प्रवास के पश्चात् इंदौर में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया, तथा श्री दिगंबर जैन माध्यमिक विद्यालय, नौलखा (इंदौर) जिसमें श्री वी. वि. विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है—के अध्यापकों से संबंधित विषय पर आवश्यक विचार-विमर्श किया।

इसके बाद उन्होंने गुजरात में प्रवेश किया और गुजरात तथा सौराष्ट्र के अहमदाबाद, सावरकाठा, सुरेन्द्रनगर, भावनगर, पंचमहल, राजकोट आदि जिलों में चल रहीं पाठशालाओं का निरीक्षण किया। इस एक माह के दौरान उन्होंने दाहोद, हिम्मतनगर, नवां, रखियाल, प्रांतिज, झींझवा, सलाल, वदवाड़, सोनासण, फतेपुर, रणासण, जांबुडी, कोटडा, सावली, पोशीना, मुनाई, मऊ, भिलोड़ा, चोरीवाड़, तलोद, अहमदाबाद, लींबड़ी, सुरेन्द्रनगर, बढ़वाण, जोरावरनगर, बांकानेर, राजकोट, वींछिया, बोटाद, गोंडल इत्यादि नगरों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया।

इनके निरीक्षण भ्रमण से व प्रवचनों से गुजरात प्रांत में अच्छी जागृति आई। फलस्वरूप आठ नवीन पाठशालाएँ खुलीं तथा कई पाठशालाएँ जो निष्क्रिय थीं उनमें गति आई।

पंडितजी को इस कार्य में श्री भारतवर्षीय वी. वि. पाठशाला समिति के अध्यक्ष माननीय पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, तथा श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड गुजरात शाखा के उप-प्रमुख श्री रमणलाल माणेकलाल शाह, मंत्री श्री चेतनकुमारजी मेहता, श्री दोशी मीठालाल मगनलालजी, श्री भोगीभाई हिम्मतनगर, श्री चंदुभाई फतेपुर, श्री कांतीभाई शाह सावली, आदि महानुभावों का सराहनीय सहयोग रहा। तदर्थ समिति उन्हें धन्यवाद देती है।

समिति के ऑनरेरी निरीक्षक श्री मांगीलालजी अग्रवाल ने उदयपुर स्थित दोनों पाठशालाओं—चंद्रप्रभ चैत्यालय एवं उदासीन आश्रम का तथा श्री दिगंबर जैन वीतराग विज्ञान पाठशाला कुशलगढ़, बागीदौरा, कलिंजरा, नौगावां का निरीक्षण किया। सभी पाठशालाएँ प्रगति के पथ पर हैं। आपकी प्रेरणा से कुशलगढ़ में सामूहिक स्वाध्याय की प्रवृत्ति हेतु स्वाध्याय मंडल की स्थापना भी हुई। **— मंत्री, भा० वी० वि० पाठशाला समिति**

आठ नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की स्थापना

अहमदाबाद - पंडित रमेशकुमारजी शास्त्री के पाठशालाओं के निरीक्षण कार्यक्रम से गुजरात के गाँवों व नगरों में स्वाध्याय व पाठशालाओं के चलाने के पक्ष में अच्छा वातावरण बना है। फलस्वरूप प्रांतिज दिगंबर जैन बोर्डिंग, सलाल, रणासण, कोटड़ा, उमराला, निमली, जोरावरनगर और मुडेरी में नवीन पाठशालाएँ खुलीं। इनमें श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर का पाठ्यक्रम पढ़ाया जावेगा। प्रांतिज में दो छात्रों ने, सलाल में भानुबेन ने और रणासण में सुशीला बेन ने पढ़ाने हेतु स्वीकृति दी है।

—रमणलाल माणेकलाल शाह, उप-प्रमुख, श्री वी०वि० पाठशाला समिति, गुजरात शाखा

महापर्व दशलक्षण समाचार

अमरावती (महा०) - पर्यूषणपर्व पर मलकापुर से श्री बाबूलालजी वैद्य पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके प्रतिदिन प्रवचन एवं दोपहर में महिलाओं की कक्षा चलती थी।

— उदयचंद जैन

खुरई (म०प्र०) - पर्वराज पर्यूषण पर पंडित पन्नालालजी ग्वालियर वाले तथा पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', संपादक सन्मति संदेश पधारे। श्री धन्नालालजी के द्वारा प्रातः मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन तथा दोपहर में छहढाला की कक्षा चलती थी। पंडित प्रकाशचंदजी के तत्त्वार्थसूत्रपर एवं दोनों विद्वानों के दशधर्मों पर मार्मिक प्रवचन चलते थे। इस अवसर पर आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। **—शिखरचंद जैन**

अम्बाह (म०प्र०) - पर्यूषण पर्व पर विदिशा निवासी पंडित लालजीरामजी पधारे। जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला एवं दशधर्मों पर आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आत्मधर्म के ५ आजीवन तथा ४१ वार्षिक ग्राहक बनाये गये। वीतरागविज्ञान स्वाध्याय मंडल का भी गठन किया गया। **— मंत्री**

सीहोर (म०प्र०) - अशोकनगर निवासी पंडित कैलाशचंदजी पर्यूषणपर्व पर पधारे। समाज ने आपके प्रवचनों से लाभ उठाया। एक दिन के लिये पंडित उत्तमचंदजी पधारे। आत्मधर्म के ३ आजीवन तथा ६ वार्षिक ग्राहक बनाये गये। **— संतोषकुमार जैन**

अमायन (म०प्र०) - दशलक्षण पर्व पर यहाँ पंडित रवीन्द्रकुमारजी कुरावलीवाले पधारे। आपके प्रवचनों से स्थानीय समाज ने विशेष लाभ उठाया। **— बेनीराम जैन**

मैनपुरी (उ०प्र०) - ३ अक्टूबर ७८ से १२ अक्टूबर ७८ तक श्री महताबचंद जैन एडवोकेट द्वारा सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन किया गया। विधान की कार्यविधि पंडित धन्नालालजी ग्वालियर वालों द्वारा संपन्न करायी गयी। आपके द्वारा संगीतमय पूजन तथा भक्ति के कार्यक्रम एवं तत्त्वोपदेश से जनमानस में आत्माभिरुचि के झरने प्रवाहित होने लगे।

इस अवसर पर पंडित केशरीचंदजी 'धवल' के रत्नकरण्डश्रावकाचार एवं समयसार पर आकर्षक एवं प्रभावशाली प्रवचनों में समीपस्थ नगरों तक से जनता उमड़ती थी। विधान के अंतिम दिनों में सुप्रसिद्ध अध्यात्मप्रवक्ता पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, संपादक जैनपथ-प्रदर्शक, विदिशावालों के श्री सिद्धचक्र विधान पूजन पर आध्यात्मिक प्रवचन उपसंहार रूप में हुए जिससे लोगों में आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। विधान का समापन जैनध्वज के पचरंगी परिधानों में छप्पन कुमारियों की विशाल शोभायात्रा के साथ संपन्न हुआ।

— प्रकाशचंद सकारिया

लकडवास (राज०) - दिनांक २२-१०-७८ को दो दिन के लिये कुरावड से पंडित रंगलालजी भगनोत एवं श्री अम्बालालजी के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। आपके पाँच समय के प्रवचनों को समाज ने मंत्रमुग्ध होकर सुना तथा अष्टाह्निका पर्व पर आने का आग्रह किया।

— भूरालाल जैन

खनियाधाना (म०प्र०) - दिनांक २१-९-७८ से १-१०-७८ तक पंडित केशरीचंदजी 'धवल' के पधारने से अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। प्रातः९ से १० तक समयसार की ३८वीं गाथा पर एवं रात्रि को ८ से ९ तक समयसार नाटक के आस्रवद्वार पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। युवा-वर्ग में विशेष चेतना जागृत हुई।

— सुनीलकुमार जैन

सागर (म०प्र०) - शाहगढ़ से लौटते हुए पंडित धर्मदासजी बड़ौतवाले पधारे। दिनांक २४-९-७८ से दिनांक ६-१०-७८ तक प्रतिदिन ५ बार आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए जिससे अपूर्व धर्मप्रभावना हुई। एक दिन के लिये आप अमरमऊ भी पधारे।

— मन्नूलाल जैन

पाठकों के पत्र

फुटेरा (म०प्र०) से श्री पंचमलालजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म पत्रिका में पूज्य गुरुदेव के प्रवचन बहुत ही सरल एवं सरस भाषा में छपते हैं, जिन्हें पढ़कर जनमानस का कल्याण हो सकता है। वास्तव में आज के युग में पूज्य कानजीस्वामी धर्मतीर्थ के युगप्रवर्तक हैं।

गोधरा (गुजरात) से श्री शामलदास मोहनलाल पारिख लिखते हैं—

'बहिनश्री के वचनामृत' पढ़कर बहुत आनंद आया। इसीप्रकार सरल भाषा में साहित्य प्रकाशन होता रहे।

चंदेरी (म०प्र०) से श्री श्रेयांसाकुमारजी लिखते हैं—

'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक गागर में सागर के समान है।

हापुड़ (उ०प्र०) से श्री विमलप्रसादजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म शुद्धनय पर एक विलक्षण एवं अद्भुत आध्यात्मिक पत्रिका है, जिसका संपादन आपके सुदृढ़ हाथों में आने से धर्म का विश्लेषण एवं विवेचन अत्यंत रोचक ही नहीं, अपितु सहज और सरल रूप से सम्यक्ज्ञान की अनुपम वृष्टि कर रहा है। 'परमाणु और आत्मा की भिन्नता' पर प्रकाश और 'केवल आत्मा ही सार' पर प्रेरणाप्रद विवेचन आत्मजागृति के लिये अमृततुल्य है।

मुंगावली (म०प्र०) से श्री देवेन्द्रकुमारजी सिंघई लिखते हैं—

जून के अंक में लिया गया पूज्य स्वामीजी से इंटरव्यू 'वह तो नाम मात्र का भी जैन नहीं' बड़ा अच्छा लगा। ऐसे इंटरव्यू हमेशा देते रहें। आत्मधर्म पढ़ने से सभी शंकाओं का समाधान आप ही आप हो जाता है। संपादकीय पढ़ने की तो बार-बार इच्छा होती है।

खनियाधाना (म०प्र०) से श्री उपेन्द्रजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म पढ़कर आत्मविभोर हो गया। ऐसा लगता है जैसे जीवन की सच्ची राह मिल गयी हो। पूज्य स्वामीजी के उपदेशों से नई चेतना जागृत हुई है।

सात तत्त्व का सही समीक्षक, बतलानेवाला सच्चा मर्म।
ज्ञान ज्योति जलानेवाला, मेरा प्यारा आत्मधर्म॥

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें —

(१) डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल की बहुचर्चित पुस्तक 'धर्म के दशलक्षण' छपकर तैयार है। जिन बंधुओं के आर्डर पहिले से नोट हैं, उन्हें बाइंडिंग होने से शीघ्र ही क्रमशः भेजी जावेगी। कृपया धैर्य रखें।

(२) आत्मधर्म को सभी ग्राहकों तक पहुँचाने के लिये पूर्ण सावधानी बरती जा रही है। फिर भी यदि किसी कारणवश आपको आत्मधर्म प्राप्त न हो सके तो कृपया २० तारीख के पश्चात् हमें पत्र लिखें ताकि आपकी सेवा में पुनः उक्त अंक भेजा सके।

(३) अनेक बंधु अपने पुराने ग्राहक नंबर से पत्र व्यवहार करते हैं, जिससे हमें उनके पत्र पर कार्यवाही करने में अनावश्यक विलंब होता है। अतः पत्र व्यवहार करते समय अपना नया ग्राहक नंबर लिखने का कष्ट करें।

आवश्यकता है - एक ऐसे विद्वान की जो जैन पाठशाला में धर्म पढ़ा सके व शास्त्र प्रवचन कर सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर से प्रशिक्षित सज्जन को प्राथमिकता दी जायेगी। संपर्क करें। **— ताराचंद काला, जिंतूर कॉलोनी, सेलू ४३१५०३ (महाराष्ट्र)**

आवश्यकता है - एक ऐसे विद्वान की जो जैन पाठशाला में धर्म पढ़ा सके एवं स्वाध्याय मंडल में लोगों को प्रवचन, भक्ति, पूजन आदि का लाभ दे सके। श्री वी० वि० विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा प्रशिक्षित विद्वान को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार।

—डॉ० अरुणकुमार, अध्यक्ष, वी० वि० पाठशाला, कुशलगढ़ (राजस्थान) ३२७८०१

आवश्यक सूचना - बिहार प्रांत के तीर्थक्षेत्रों की समस्याओं के बारे में तथा सम्मेदशिखरजी पहाड़ के संबंध में चल रहे केसों के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बैठक ११ एवं १२ नवम्बर, १९७८ को शिखरजी में बुलाई गई है। अवश्य पधारे। **—जयचंद लोहाड़े, महामंत्री**

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

सौ बात की एक बात

अहो! दिगंबर संतों का कोई भी शास्त्र लो; उसमें मूलभूत एक ही धारा चली जाती है कि तू 'सर्वत्र अपने ज्ञायक चिदानंद के सन्मुख हो; पर को बदलने की बुद्धि मिथ्या है।'

स्वोन्मुख होने से ही हित है, इस बात को मुख्य रखकर कोई भी बात कही हो—सर्वज्ञ की बात हो या क्रमबद्धपर्याय की बात हो; छहद्रव्य, नवतत्त्व, निश्चय-व्यवहार या उपादान-निमित्त की बात हो; द्रव्य-गुण-पर्याय की बात हो या बारह भावनाओं की बात हो; सभी बातों में संतों का मूल तात्पर्य तो यही बतलाना है कि हे जीव! अपने ज्ञान-स्वभाव का निर्णय करके उस ओर उन्मुख हो!

'मैं तो ज्ञानपिंड हूँ; ज्ञान के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का किंचित्मात्र कर्तृत्व मुझमें नहीं है;' जब तक जीव ऐसा निर्णय न करे तब तक हित का मार्ग हाथ नहीं आता और दिगंबर संतों ने क्या कहा है, इसकी भी उसे खबर नहीं पड़ती।

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७६, दिसंबर १९५९, पृष्ठ ३६९

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००	मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
समयसार कलश टीका	६-००	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
प्रवचनसार	१२-००	मैं कौन हूँ?	१-००
पंचास्तिकाय	७-५०	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
नियमसार	५-५०	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०	अपने को पहचानिए	०-५०
अष्टपाहुड़	१०-००	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
समयसार नाटक	७-५०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	सत्तास्वरूप	१-७०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	प्रेस में
आत्मावलोकन	३-००	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०	युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
द्रव्यसंग्रह	१-५०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	सत्य की खोज (भाग १)	२-००
प्रवचन परमागम	२-५०	आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — साधारण :	२-००
धर्म की क्रिया	२-००	आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — सजिल्द :	३-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०		
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०		
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०		
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००		
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०		
वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००		
(छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)			
बालपोथी भाग १	०-६०		
बालपोथी भाग २	प्रेस में		
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००		
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०		
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०		
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०		
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०		
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००		
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००		
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५		
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५		
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००		

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४